भारतीय जनता के हितार्थ प्रकाशित—

स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज

माधो प्रसाद

स्वास्थ्य विज्ञान पर एक भारतीय वैज्ञानिक की नवीन खोज

लेखक—माधो प्रशाद
(रायसाहब)
ए०-एम-आई-स्ट्रक्-ई (लंदन)
एफ-आर-एस-ए०(लंदन)
सिविल इन्जीनियर & साइनटिस्ट।
(रेलवे के डिवीजनल इन्जीनियर—लंबी छुट्टी पर)
(भारतीय प्राचीन वैज्ञानिक रहस्यों की खोज करने वाले)
(१६२४ में देहली की बिलडिंग-शिफ्ट करने वाले)
मोरगंज
सहारनपुर (उ० प्र०)

भूमिका लेखक— कविराज पं० जगदीश चन्द्र मिश्र आयुर्वेदाचार्य
आरोग्य-भवन रसशाला सहारनपुर

प्रकाशक

शरद-साहित्य-सदन

सहारनपुर

प्रथम संस्करण १९५१

मूल्य—सद भावना

मुद्रक—वैद्य शरद कुमार मिश्र 'शरद'

हिन्दुस्थान मुद्रणालय,

सहारनपुर

वक्तव्य

प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है कि भारतीय विज्ञान विश्व विख्यात था। ऐसे बहुत से प्रमाण हैं कि देश देशान्तर से लोग यहाँ समय २ पर विज्ञान व अन्य कलाओं की शिक्षा ग्रहण करने के लिये इस देश में आते रहे। भारतीय वैज्ञानिकों ने वैदिक काल से मनुष्य की सुख सम्पति बढाने के लिये पूर्ण रुप से प्रयत्न किया था। जिसका आधार केवल पंच तत्वों की प्राकृतिक क्रियायों की सत्यता पर ही अवलम्बित था।

मनुष्य के जीवन यापन की सर्व प्रमुख आवश्यकता अच्छा स्वास्थ्य है। जिसे प्राप्त करने के लिये वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन किया है जो कुछ प्रकृति के नियमों के अनुकूल और कुछ प्रतिकूल नियमों पर निर्धारित हैं

प्रमाण के रूप में पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत स्वास्थ्य विकृति का मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं द्वारा विष का फैलाया जाना है पाश्चात्य विद्वानों का यह मत केवल प्रकृति नियमों की अनभिज्ञता ही थी। और इन वैज्ञानिकों ने अपने इन लचर बिचारों का इस तीव्रता से प्रचार किया कि लोगों को इस निराधार विचार को ही मानना पड़ा और भारत के स्वास्थज्ञ वैज्ञानिकों को इतना अवकाश ही नही मिला कि वे इस सिद्धान्त की सत्यता या असत्यता पर पूर्णविचार करें।

इस छोटी सी पुस्तक में लेखक ने स्वास्थ्य विज्ञान पर अपने अन्वेषणों की पाश्चात्य वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों से तुलना करके यह बात साबित की है कि स्वास्थ्य विकृति जिन दोषो से फैलती है वह विकार केवल विभिन्न प्रकार के पदार्थो में जल वायु और अग्नि के ससंर्ग ही से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य की अज्ञानता के कारण बढ़ कर यह महान बिषोंका रुप धारण कर लेते हैं। किसी भी कीटाणु, मक्खी, मच्छर आदि द्वारा नही उत्पन्न होते।

इस पुस्तक की प्रतियाँ भारतीय विद्वानों, वैज्ञानिकों, स्वास्थ्य अधिकारी, पत्र संपादकों और विख्यात वैद्यों की सेवा में भेजी जा रही है और प्रार्थना की जारही है कि अपनी २ राय दे कर सब श्रीमान लेखक को कृतार्थ करेगें जिससे लेखक को इस पुस्तक को छपवाने और अपने अन्वेषण को आगे जारी रखने का पूर्ण साहस मिले।

फरवरी १९५१   लेखक—माधोप्रशाद

-:--:-

भूमिका

जन्म जन्मान्तर के सत्कर्मों का परिणाम मनुष्य शरीर सृष्टि प्रधान एवम् सर्वश्रेष्ठ है यह विवाद रहित तथ्य है। इसकी सर्वश्रेष्ठता के सहस्रों कारणों में से यदि सर्व प्रधान कारण का उल्लेख किया जाय तो वह बुद्धि तत्व ही होगा। यद्यपि अन्य प्राणियों में भी साधारण बुद्धि पाई जाती है। किन्तु इसका चरम विकास मनुष्य में ही पाया जाता है तभी तो "नरत्वं दुर्लभ लोके" अथवा "जन्तूनां नर-जन्म दुर्लभम्" कह कर नरत्व को महत्व दिया है ?

प्रवृत्तिशील मनुष्य की अनन्त प्रवृत्तियों में अन्वेषण एवम् अभि-व्यञ्जन नाम की दो प्रवृत्तियाँ प्रबल एवम् प्रधान है। अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति से प्रति वस्तु के तत्व की खोज की जाती है और अभिव्यञ्जनात्मक प्रवृत्ति से खोज के द्वारा अवगत तत्व को दूसरों पर प्रकट किया जाता है। इन दोनों प्रवृत्तियों को यदि जीवन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी क्योंकि इन प्रवृत्तियों से शून्य व्यक्ति को सहृदय समाज निर्जीव अथवा पाषाण ही मानता है।

यह अवश्य है कि अन्वेषण की दिशा समय, समाज, परिस्थिति तथा बुद्धि के अनुसार प्रति व्यक्ति के लिए भिन्न २ होती है।

अन्वेषक अपनी निश्चित दिशा पर चलते हुए अन्वेषण से ज्ञात तत्वों को लौकिक व्यवहार, व्याख्यान, छोटे छोटे लेख एवम् पुस्तकों द्वारा जनता पर प्रकट करना चाहता है एवम् प्रकट करता है इस। अभि-व्यञ्जनात्मक प्रवृत्ति के अधीन होकर प्रकृत निबन्ध के लेखक ने थोड़े से

वैज्ञानिक तथा जनता के समक्ष उपस्थित किए हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक जान पड़ता है कि लेखक का चुनाव समयोचित तथा उदारभावना पूर्ण है। क्योंकि जीवन की सफलता स्वास्थ्य पर निर्भर है। स्वास्थ्य नियमों तथा स्वास्थ्य विरोधी वस्तुओं के बिना जाने स्वस्थ रहना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। अस्वस्थ मनुष्य अपने तथा समाज के लिये भारभूत है। स्वस्थ पुरुष ही 'जीवेमशरदः शतम्, पश्येमशरदः शतम् प्रब्रवाम शरदः शतम् अदीनाः स्यामशरदः शतम्" की घोषणा का सच्चा अधिकार हो सकता है। प्राचीन भारत इस रहस्य को न केवल जानता ही था अपितु "व्यवहार पालन" सिद्धान्त को चरितार्थ कर मृत्युञ्जय बनने का सौभाग्य भी प्राप्त कर चुका था। परन्तु आज की भारतीय मृत्यु संख्या एवम् आनुपातिक वय के आँकड़े हमें स्पष्ट बता रहे हैं कि हम अस्वास्थ्य की चरम रेखा पर पहुँच गए हैं। ऐसी दशा में कोई भी भद्र पुरुष निस्संकोच हो स्वास्थ्य निरमानाभिज्ञ कह सकता है। इसी धारणा से वर्तमान काल में प्रकृत निबन्ध प्रतिपाद्य विषय की आवश्यकता ऊपर बताई गई है। रचयिता ने इस निबन्ध में पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु की गुण क्रिया का वर्णन करते हुए परिणामी पदार्थों के तीन परिणामों का विस्तार से वर्णन किया है। इन परिणामों के औचित्य से स्वास्थ्य एवम् अनौचित्य से अस्वास्थ्य का आविर्भाव होना है। अतः इन परिणामों पर ध्यान रखने की आवश्यकता बताई है। परिणामों के अवसर पर स्वाभाविक तथा असावधानताजन्य स्थूल, तरल एवम् गैस तीन प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं। स्थूल विष एक देशीय होता है अतः उससे न्यून ही हानि होती है। तरल विष स्थूल की अपेक्षा अधिक स्थान व्यापी होता है। अतः द्वितीय प्रथम की अपेक्षा अधिक हानिकर है। अन्तिमविष वायु से मिलकर दूर दूर तक फैलता है इसलिए अत्यधिक हानिकर होता है। ऐसी दशा में जहां स्थूल एवम् तरल विषसे बचने के लिए सावधानी की आवश्यकता है वहां अन्तिम विषसे बचने के लिए अत्यधिक सावधानी

की आवश्यकता है। प्राकृतिक नियमानुसार भी इन विषोंका ह्रास एवम नाश होता रहता है। कीड़े, मकोड़े, तथा मच्छर इसी विष शोध के लिए उत्पन्न होते हैं। भारतीय पर्वो के अवसर पर किए जाने वाले हवन तथा बृहद यज्ञ भा इस विषनाश कार्य में सहायता पहुंचाते हैं। इन्ही बातों का विशद विवेचन योग्य लेखक ने बड़ी योग्यता से किया है। पुस्तक का आकार लघु अवश्य है किन्तु विषय पठनीय एवम् मननयोग्य है।

शरद साहित्य सदन
सहारनपुर

वैद्य जगदीशचन्द्र मिश्र
(संस्थापक 'वैद्य वाणी')

भारतीय और पाश्चात्य स्वास्थ सम्बन्धी नियमों पर तुलना-त्मक विचार ।

प्राचीन भारतीय स्वास्थ वैज्ञानिको के विचारों के अनुसार स्वास्थ नाशिक और छूत से फैलाने वाले भयानक रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण विषाक्त वायु और जल का हो जाना हो या जिसकी उत्पति उस प्रकार होती है ।

१ भारतीयों को प्रकृति के अन्तर्गत चार तत्वों के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान और उन पर दृढ़ विश्वास था ।

(क) अग्नि:—इसका गुण गर्मी पैदा करना, जलाना, अपसारण करना और पृथ्वी, जल, वायु को गर्म हल्की और फैलने वाली कर के उसको ऊपर की ओर उठाना है । और उसमें जो भी दूषित पदार्थ आ जाते हैं, जिनके कारण वह विषैले हो जाते हैं, उनको उनसे रहित कर देना है ।

जल:—इसका गुण ठन्डा करना, गलाना और संकुचित करना है । यह पृथ्वी और वायु को ठन्डा, भारी और संकुचित करके उन्हें नीचे ले जाता है । और उन्हें सड़ने योग्य बनाता है । और उनमें जो विष मिले होते हैं । उनकी मात्रा और अधिक कर देता है ।

वायु:—यह क्रिया हीन होती है । और भूस्थल पर स्वच्छन्द रूप से बहती है, और अग्निके सम्पर्क में दाह क्रिया और गर्मी को

तीव्र कर देती है. तथा जल के सम्पर्क में गलाव की क्रिया और ठन्ड को तीव्र कर देती है।

पृथ्वी:—एक स्थूल पदार्थ है।

पृथ्वी:—(वानस्पति और माँसिक भाग) एक स्थूल पदार्थ है, यह वायु, जल और अग्नि के सहयोग से भूस्थल पर तथा मनुष्यों के शरीर के अन्दर अनेक प्रकार के परिवर्त्तनों की उत्पत्ति करती रहती है, जो परिवर्तन समस्त प्राणियों के जीवन पोषण के लिये नितान्त आवश्यक है। इन्ही परिवर्त्तनों से भिन्न भिन्न वस्तुओं में सहस्त्रों भौतिक कार्यों का सम्पादन होता है। उदाहरणार्थ पोटाश और लवण एक वस्तुसे दूसरी और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर सबसे आवश्यक प्राणी मनुष्य की भिन्न २ आवश्यकत्ताऐं पूर्ण करते हैं। और पुन: अपने स्थान पर वापिस आ जाते हैं। यह परिवर्तन सम्पूर्ण भूस्थल पर सर्व पदार्थों में और मनुष्यों के शरीर के अन्दर भिन्न २ रूप से होते रहते हैं। संसार में ये परिवर्त्तन अति महत्व पूर्ण कार्य करते हैं। और इनके द्वारा अति विशाल भौतिक कार्यों का जो दिन प्रति दिन अनेकों खाद्य पदार्थों तथा जीवधारियों के शरीर के अन्दर होते रहते हैं. यद्यपि उनका सम्पादन पृथ्वी, जल वायु और अग्नि के संसर्ग से होता है। तोभी अपने रसायानिक क्रियाओं द्वारा जानवरों और मनुष्यों के स्वास्थ्य पर तीव्र प्रभाव डालते हैं।

(ख ये परिवर्त्तन जिनका वर्णन हम अभी कर चुके हैं। केवल वानस्पतिक और मांसिक पदार्थ जैसे अनाज, फल, दूध, तरकारी में और मांस आदि में ही होते हैं। दुनिया में क्षीणता तथा सड़ाव गलाव भी इन्हीं परिवर्त्तनों के आधार पर होताहै। ये वनास्पतिक और मांसिक पदार्थ जो मनुष्यों के

खाद्य पदार्थ हैं। जैसे अन्न, फल, आदि तथा अन्य उपयोगी पदार्थ, छोटे २ भागों में विभाजित हो जाते हैं। इनमें से अधिकांश मनुष्य और उसके पालतू जानवर भोजन तथा चारे के रुप से प्रयोग करते हैं।

(ग) ये परिवर्तन उसी समय से आरम्भ हो जाते हैं। जिस समय से अन्न, फल आदि पेड़ से अलग होते हैं। या जिस समय से मनुष्यों या जानवरों का शरीर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

(घ) यद्यपि ये परिवर्तन प्रत्येक मनुष्य के शरीर में भी होते रहते हैं। पर वे सर्वथा भिन्न प्रकार के होते हैं। उनका वर्णन हम यहां न करेंगे। हमारा मुख्य उद्देश्य उन परिवर्तनों का, जो मनुष्यों तथा जानवरों के खाद्य पदार्थों और उनकी विष्ठा से सम्बंधित है, वर्णन करना है।

(ङ) डाल से प्रथक होने के पश्चात ये नाज फल आदि तीन अव-स्थाओं से निकलते हैं। यह तीनों अवस्था बड़ा महत्व पूर्ण हैं। और वे ये हैं।

अवस्था नं० १—उस समय को कहते हैं जिसका आरम्भ इन पदार्थों के डाल से अलग होने के क्षणसे होता है और जिसकी समाप्ति उसको मनुष्यों तथा जानवरों के मुख पर खाये जाने के लिये पहुँचने पर होती है। इस अवस्था को खाद्य पदार्थ को सुरक्षित रखने वाली अवस्था कह सकते हैं।

अवस्था नं० २—यह वह अवस्था होती है जो खाने के क्षण से आरम्भ होती और जब तक मनुष्य व जानवरों के शरीर में मल बन कर बाहर नहीं निकल जाती, तब तक रहती है। उसको स्वास्थिक 'अवस्था' कह सकते हैं।

अवस्था नं० ३—यह वह अवस्था है। जो मल के शरीर से बाहर निकलने के क्षण से उसके नष्ट हो जाने के क्षण तक रहती है।

जब भोजन चारा, अथवा फल बिना पूर्णतया प्रयोग हुये नष्ट कर दिये जाते हैं। तब वे सीधे अवस्था १ से ३ में आ जाते हैं। अतः प्रत्येक खाद्य पदार्थ को न्यून से न्यून दो और अधिक से अधिक तीन अवस्था से निकलना पड़ता है।

(च)—इन्हीं परिवर्तनों के कारण पदार्थ सड़ते गलते हैं और कौन सी वानस्पतिक तथा माँसिक पदार्थ की वस्तु कम से कम कितने समय तक सुरक्षित अवस्था में रक्खी जा सकती है, उसका प्रयोग में लाने वाले साधनों पर निर्भर है। अनेक कृत्रिम उपायों से मनुष्य पहला अवस्था में खाद्य वस्तुओं को सुरक्षित रखता है। दूसरी अवस्था में यह पाचन शक्ति और स्वास्थ पर निर्भर होता है और तीसरी अवस्था में यह कृत्रिम उपायों और उनको नष्ट करने के उपायों पर निर्भर है। संक्षेप में अनाज के एक दाने का भार उसके डाल से अलग होने के बाद प्रति क्षण कम होना आरम्भ हो जाता है और ऐसा उस समय तक होता रहता है जब तक उसे कोई प्राणी खा नहीं लेता और वह विष्ठा बनकर विष में परिवर्तित नहीं हो जाता अथवा वह भिन्न रूप धारण नहीं कर लेता या जब तक वह सड़ नहीं जाता। यद्यपि यह मार्ग चक्करदार है फिर भी अन्त में वह उसी पर पहुँच जाता है।

साधारणतया इस सुरक्षित रखने का अवस्था नं० १ में भी यह सड़ाव गलाव और उससे क्षीण होने की क्रिया जल, वायु और अग्नि के संसर्ग से ही बराबर जारी रहती है। इन तीनों तत्वों (जल, वायु और अग्नि) में से यदि किसी एक को भी निकाल दें तो यह सड़ाव गलाव की क्रिया तुरन्त बन्द हो जावेगी।

अवस्था नं० २ में भी इसी सड़ाव गलाव की क्रिया को वैज्ञानिकों

ने पाचन शक्ति कहा है। यह पाचन क्रिया शरीर में भली प्रकार उसी समय होती है जब यह तीनों तत्व पक्वाशय में भोजन के संसर्ग में आते हैं। पक्वाशय में तापक्रम ९८.४ फैरन हाइट होता है।

अवस्था नं० ३ में अवस्था नं० १ की तरह सड़ाव गलाव का वेग दो बातों पर निर्भर है।

(i)...विष का शरीर से निकल जाने के पश्चात नष्टग्रह तक सुरक्षित रूप में बक्स आदि के अन्दर बन्द करके रखना अथवा ले जाना।

(ii)...नष्ट ग्रह में नष्ट कर देने पर।

(छ) पृथ्वी—यह ठोस पदार्थ हैं, जिसके छिद्रों में तीनों तत्व जल, वायु और अग्नि रहते हैं।

जल:—यह तरल पदार्थ है, जिसमें पृथ्वी को छोड़ कर अन्य दो पदार्थ वायु और अग्नि रहते हैं।

अग्नि:—यह गरम पदार्थ है, जिसके छिद्रों में केवल वायु ही रहती है।

वायु:—यह सूक्ष्म और बहने वाला पदार्थ है, जिसके छिद्रों में कोई पदार्थ नहीं रह सकता।

(आकाश जो पांचवाँ तत्व है, उसका वर्णन यहां नहीं किया जाता)

(ज)—बानस्पतिक तथा मांसिक पदार्थ के सड़ाव गलाव की क्रिया केवल उसी समय आरम्भ होती है, जब वे अन्य तीनों तत्वों जल वायु और अग्नि के संसर्ग में पूर्ण तरह आ जाती है। सड़ाव गलाव की सबसे अच्छी परिस्थिति वह है जब किसी बानस्पतिक व मांसिक पदार्थ को पर्याप्त मात्रा में जल, वायु और गर्मी (५० फ० से १५० फ० तक की सीमित ताप) मिलती है। इसके लिये शरीर का ताप ९८.४ सबसे उपयुक्त होता है। यदि इन तीनों तत्वों में से एक भी कृत्रिम

उपायों मे निकाल लिया जाय तो उससे सुरक्षित अवस्था पैदा हो जावेगी. और सड़ाव गलाव की क्रिया एक दम स्थगित हो जावेगी।

निम्नलिखित तीनों विधियों से वर्तमान वैज्ञानिक भी खाद्य पदार्थ सुरक्षित रखते हैं।

(i)—पानी निकाल कर अर्थात वस्तु को सुखा देने से।

(ii)- ताप निकाल कर अर्थात वस्तु को बर्फ में रखने से।

(iii)-वायु निकाल कर अर्थात वस्तु को शून्य में पहुँचा कर।

(इन तीनों विधियों के अतिरिक्त, पदार्थ को सुरक्षित रखने की एक और रसायनिक विधि भी है जिसका वर्णन हम यहां नहीं करेंगे)।

ये प्रयोग हम केवल संक्षेप में ही वर्णन करेंगे। भारतियों ने उपयुक्त तीनों क्रियाओं का निम्न रूप में प्रयोग किया है।

(i)—हरी तरकारियां धूप में सुखाकर महीनों सुरक्षित रूप में बिना सड़े गले रक्खी जाती हैं जैसे करेला, कचरी आदि।

(ii)- खाद्य पदार्थ ठन्डे स्थानों में सुरक्षित रक्खे जाते हैं।

(iii)-तेल में वस्तुएं सुरक्षित रक्खी जा सकती हैं जैसे अचार आदि।

यह सब अवस्था नं० १ यानी खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने वाली अवस्था का वर्णन किया गया, अब अवस्था नं० २ का वर्णन करते हैं।

अवस्था नं० २ में अच्छा पाजन वह है, जिसमें सड़ाव गलाव शीघ्रतम हो और यह मनुष्यो के लिये (अवस्था नं०२ में) अधिक लाभ दायक है। इस दशा में भोजन मनुष्य के शरीर में ही रहता है। यदि इस अवस्था में तीनों तत्वों में से यदि एक भी तत्व निकाल लिया जाय तो कथित अवस्था नं० १ और नं० ३ आ जावेगी और ऐसी दशा में अवस्था नं० २ में पाचन विकार स्वास्थ बिगाड़ देगा और मनुष्य की मृत्यु हो जावेगी।

अर्थात् :-प्राचीन भारतीय औषधी वेत्ताओं और वैद्यों के अनुसार तीनों तत्वों कफ, पित्त, वायु, (जल, अग्नी, वायु) में से एक भी शरीर से निकल जाने पर मनुष्य की मृत्यु हो जावेगी।

ii यदि इन तीनों तत्वों में से एक भी नियत मात्रा से कम हो गया तो बेचैनी प्रतीत होगी।

iii इन तीनों तत्वों में से किसी के भी नियत मात्रा से बढ़ जाने पर रोग पैदा हो जाते हैं और इसी दशा को स्वास्थरक्षा के लिये बचानी चाहिये।

iv इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक तत्व यदि अपनी नियत मात्रा में है तो मनुष्य स्वास्थ्य बना रहेगा। यहि कारण है कि प्राचीन भारतीय औषधि वेत्ताओं ने रोग का कारण तीनों तत्वो कफ, पित्त, वायु) में से किसी एक दो या तीनों का अधिक हो जाना बताया है और उसका उपचार बढ़े हुये के वल तत्व को घटा देना है। उन्हें किटाणुओं से चिन्तित होने की आवश्यकता न रहती थी।

अवस्था नं० ३ में मनुष्यों के शरीर से उत्पन्न हुए मल विषों को सुरक्षित रखना इसलिये आवश्यक है जिससे उसकी दुर्गंध न फैलने पावे और उससे स्थानीय जलवायु विषाक्त न हो सके कुछ समय बाद यह निम्न तीन रीतियों में से नष्ट कर दिया जाता है।

(i) गलाव, सड़ाव (विष्टा को गढ़ों में गलाने सड़ाने से)

(ii) ··· ······ (विकरण क्रिया से ········ ···)

(iii) आग्नीकरण (दहन क्रिया से अर्थात जलाने से)

[क]—नियमानुसार जैसे ही कोई वानस्पतिक या मांसिक पदार्थ जल हवा और अग्नि के सम्पर्क में आता है वैसे ही परिवर्तन आरम्भ हो जाता और दुर्गंध की उत्पत्ति हो जाती है इस उत्पत्ति का कारण प्राकृतिक रसायनिक) नियम है। जो वानस्पतिक तथा मांसिक पदार्थ के तीनों तत्वों के सम्पर्क में आने पर तुरन्त ही आरम्भ हो जाती है

[ख]—अतः अवस्था १ और ३ में भूस्थल पर प्रत्येक स्थान पर हर समय कुछ न कुछ दुर्गन्ध निकला करती है यह जीव धारियों के शरीर में अवस्था नं० २ में भी निकलती है। जो पाचन क्रिया से पैदा होती है. अन्तर केवल यह है कि अवस्था १ और ३ में तो यह विकार पैदा करती है परन्तु अवस्था २ में यह मनुष्य के लिये पाचन क्रिया में उपयोगी होती है इन तीनों अवस्थाओं में परिवर्तन और दुर्गन्ध की उत्पत्ति स्वयं होती रहती है। अन्तर इतना है कि अवस्था नं० १ में यह परिवर्तन और उससे दुर्गन्ध मनुष्यों के लिये पूंजी का घाटा देने वाली होती है अवस्था नं० २ में मनुष्यों के स्वास्थ की वृद्धी करती है। और अवस्था न० ३ में मनुष्यों के स्वास्थ को रोग उत्पन्न करती है। यही कारण है कि खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये और मनुष्यों को शरीर में पाचन वृद्धी करने के और विष को नष्ट करने के लिये नये २ साधनों का आविष्कार हुआ। जिन पर प्राणी मात्र का जीवन निर्भर है, संसार में मनुष्य के जीवन पोषण में ऊपर कही हुई तीनों अवस्थाओं का होना आवश्यक है इसके बिना मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं और यह परिवर्तन पुर्णतया रोके भी नहीं जा सकते।

हम यह देख चुके है कि भूस्थल पर तीनों अवस्थाओं में प्रत्येक स्थान पर कुछ न कुछ दुर्गन्ध पैदा होती ही रहती है। अतः जहाँ कहीं भी मनुष्य रहते हैं वहाँ पर दुर्गन्ध पैदा होना निश्चित है और मानव जीवन का दुर्गन्ध उत्पत्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है। बुद्धिमान मनुष्य इस दुर्गन्ध को अपनी बुद्धिमत्ता और नये २ साधनों से कम करते रहते हैं और जो कुछ भी दुर्गन्ध पैदा हो जाता है उसे शीघ्रता से नष्ट कर देते है। इसके विपरीत मूर्ख लोगों का न तो दुर्गन्ध उत्पत्ति पर ही वश चलता है, न इसे नष्ट करने में ही सफल होते हैं और परिणाम स्वरूप रोग ग्रसित हो जाते हैं।

[ग] वह सड़ाव गलाव से उत्पन्न हुई दुर्गन्ध अपनी उत्पत्ति के

समय एक अंश वायु, जल या पृथ्वी का लेकर तीनों प्रकार की दुर्गन्ध दुर्गन्धित वायु, दुर्गन्धित जल और दुर्गन्धित पृथ्वी अत्याधिक परीमाण में पैदा करती रहती है।

[थ] सड़ाव गलाव की तीन अवस्थायें होती हैं।

(i) हलका सड़ाव (खमीर उठना) हलका सड़ाव गलाव

(ii) साधारण सड़ाव———— पूरा सड़ाव गलाव

(iii) तीव्र सड़ाव (विषाक्त सड़ाव) विष उत्पन्न करने वाला सड़ाव

[द] विष तीन प्रकार के हैं। ठोस, तरल और गैसीय जो प्रकृति के नियमों से ज्ञात मनुष्यों के प्रत्येक रोकने के प्रयत्नो को करते हुये भी प्रकृति के अखण्ड नियम के अनुकूल सदा भूस्थल पर होते रहते हैं। और इनका होना मनुष्य मात्र के लिये अति उपयोगी और परमावश्यक है।

[ध] इनमें से कुछ विष तीव्र गति के और कुछ साधारण गति के होते हैं।

[न] इन विषों की उत्पत्ति उन स्थानों पर होती है जहां मनुष्य-या उनके पालतू जानवर रहते हैं। इन्हीं तीन प्रकार के मुख्य विषों से भांती भांती के अनेक विष पैदा हो जाते हैं। इन विषों से ही छूत की बीमारियां फैलती हैं।

[प] पार्थिव बानस्पतिक और मांसिक पदार्थों से अन्य तीन पदार्थ (जल, वायु, अग्नि) का संसमायक होने से अनेक प्रकार के विष निम्न प्रकार से पैदा होते हैं। इन प्राथिव पदार्थों में जो जल-वायु, और अग्नि पहले से ही मिली होती है उनसे भी सड़ाव गलाव की उत्पत्ति होती है। एक विशेष प्रकार के सड़ाव गलाव से किस प्रकार का विष पैदा होजाता है यह निम्न बातों पर निर्भर है।

i सड़ाब गलाब होने वाला पदार्थ किस जाति का था और किन पदार्थों से मिल कर बना था।

ii इस पदार्थ में जल, वायु और अग्नि किस अनुपात में था।

iii सड़ाव गलाव कितने समय तक रहा और उसका वेग कितने समय तक और किस तीव्रता से रहा।

iv सड़ाव गलाव के साथ २ उत्पन्न विषों को नष्ट करने का भी कोई साधन प्रयोग में लाया जाता रहा अथवा नहीं।

इससे प्रतीत होता है कि समान पदार्थों के सड़ाव गलाव जो समान-परिस्थिती में उत्पन्न हुये हों, वह एक ही प्रकार का बिष अनेक स्थानों पर उत्पन्न करते हैं और उससे वातावरण भी समान प्रकार से ही दूषित होता है और समान प्रकार के रोग पैदा होते हैं।

(२)

मनुष्य के शरीर पर तीनों प्रकार के विषों (ठोस तरल गैसीय) का प्रभाव

जैसा प्रथम ही बताया जा चुका है यह विष अवस्था नं० १ में खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने की अधूरी क्रियाओं से अवस्था नं० ३ में बिष और मलों का प्रथम सुरक्षित रखने फिर नष्ट करने की अधूरी क्रियाओं से और अवस्था नं० २ में शरीर की अस्वस्थ पाचन शक्ति की क्रियाओं से उत्पन्न होते रहते हैं।

अवस्था १ और ३ से पैदा हुये विष होने वाले स्थान के वातावरण के गतिमान (जल, वायु के वहन शील होने के कारण) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँच जाते हैं। वातावरण के अतिरिक्त इन विषों से कुछ पृथ्वी का अंश भी दूषित हो जाता है परन्तु यह दूषित पृथ्वी का अंश अपने दूषित प्रभाव से वातावरण थोड़े ही भाग को प्रभावित

करके ज्यों का त्यों बना रहता है ।

अवस्था नं०२ से मनुष्य के शरीर के अन्दर पाचन क्रिया द्वारा उत्पन्न हुये विष से मनुष्य के चारों ओर का वाता वरण दूषित हो जाता है और मूत्र से नालियों का जल और विष्ठा से पृथ्वी का अंश दूषित हो जाता है सरांश यह है कि इन विषों से निम्नलिखित तीन वस्तुओं पर दूषित प्रभाव पड़ता है

i विष्ठा अथवा सड़ने वाली चीजो के ढेर पर

ii नालियों के पानी पर

iii पृथ्वी तल से स्पर्श करती हुई वायु की सतह पर लग भग १०,१५ फीट की ऊंचाई तक या मकानो की १ माञ्जल तक

स्थूल विषो के ढेरों से एक स्थानीय होने के कारण दुर्गन्ध को छोडकर और कोई दोष वाता वरण में नहीं आता ! नालियों का दूषित जल एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहन शील होने के कारण इन विषों के प्रभाव को दूर दूर तीव्रता से फैला देता है परन्तु सबसे अधिक दूषित प्रभाव वायु से पड़ता है चूँकि विषाक्त वायु का प्रभाव उसके अति-बहन शील होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर बडे वेग, तीव्रता और शीघ्रता से फैल जाता है ! अत: ये विष रहने के स्थानों को दूषित कर देते है और इन का प्रभाव वाता वरण पर भी पड़ता है ! वाता वरण के ही द्वारा यह विषाक्त प्रभाव एक मकान से दूसरे मकान में स्वयं पहुँच जाता है ! प्राचीन हिन्दी तथा अरबी ग्रन्थों में भी रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण वात, वरण का ही विषाक्त होना माना गया है और रोगों के रोकने के उपायों में वाता वरण की स्वच्छता पर ही अधिक ध्यान दिया जाता था !

जब कोई प्राणी इन विषों से ग्रसित हो जाता है तब यह विष शरीर में अपना प्रभाव डाल देते है और पास के वाता वरण को दूषित

कर देते है ! शरीर में यदि इसी समय सड़ने, गलने की उचित अवस्था मिल गई तो यह विष और भी तीव्रता से बढ़ने लगता है ! जिस से यह शरीर के भीतरी रक्त को ही केवल विषाक्त नही करदेते परन्तु शरीर के चहुं ओर बाहर का वायु को भी विषाक्त कर देते हैं ! और यह वायु जिस जिस दूसरे शरीर को छूती है उन के भीतर भी उसी रोग की उत्पत्ति कर देती है !

विषों की वृद्धी का यह चक्र उस समय तक चलता रहता है जब तक उस स्थान के सब मनुष्य उन विषों से रोग ग्रसित नहीं हो जाते और यह दूर तक नही फैल जाता और उस समय तक बढ़ता ही रहता है जब तक इसके रोकने के दो साधनों का प्रयोग नही किया जाता ! अथवा

i दूषित वायु की शुद्धि
ii रोगियों की उचित चिकित्सा !

४ चिकित्सा और रोकः—

[अ] रोगी चिकित्सा का हमारे विषय से असम्बन्धित होने के कारण हम उस का वर्णन नही करेगें !

[ब] दूषित वातावरण को निम्न रीति से शुद्ध किया जा सकता है

[५] प्राचीन भारतीय विज्ञानिकों के उन प्रयोगों का वर्णन करने से पहले. जिन को वे बस्तियों तथा पृथ्वी के समीपवर्ती दूषित वायु को स्वच्छ करने के हेतु काम मे लाते थे, हम उन कतिपय कार्यों का वर्णन करेगें. जिसकी सत्यता पूर्ण रूप से केवल भारतीय विज्ञानिकों और दर्शन वेत्ताओं के अतिरिक्त अन्य किसी ने आज तक अनुभव नही की।

यदि ये तीनों प्रकार के विष प्रकृति में यूँ ही रहने दिये जाँए तो कुछ समय बाद प्राकृतिक साधनो जैसे धूप वर्षा तथा वायु द्वारा ये स्वयं शुद्ध कर दिये जाते हैं ! और इन में सब से अद्भुत साधन जिसे वर्तमान वैज्ञानिकों को जानना चाहिये. सब प्रकार की मक्खी मच्छर पिस्सू तथा अन्य प्रकार के कीटाणु हैं जिन की सहायता से केवल

वाता वरण का ही विष नही वरन् नालियों और कूड़ों के ढ़ेरों का बहुत सा विष भी प्रकृति के अकाट्य नियम द्वारा शुद्ध करादिया जाता है !

६ भारतीय वैज्ञानिकों और दर्शन वेत्ताओं के मतानुसार सहस्रों प्रकार की मक्खियों, मच्छरों, पिस्सुओं और कीटाणुओं द्वारा प्रकृति विष निर्माण का काम लेती है। इसका विशेष वर्णन हम यहां नही करसकेंगे !

जब मनुष्य बस्तियों में अपनी अज्ञानता और अनभिज्ञता द्वारा एक या एक से अधिक प्रकार का विष उत्पन्न कर लेते हैं तथा कृत्रिम उपाय से अधिक मात्रा (जो बस्ती पर निर्भर है) में विष की उत्पत्ति रोकने में अथवा विष कम करने में असमर्थ होते हैं, जिस से आस पास की बस्ती पर विषाक्त प्रभाव पड़ने का डर होजाता उसी है समय प्रकृति के कीटाणु रूपी सिपाही, विष-नष्टता और भू स्थल के वायु मडंल की शुद्धता करने के लिये आ जाते हैं।

जब २ ये तीन प्रकार के विष निम्नलिखित तीन प्रकार की क्रियाओं में बिषेश स्थानों में अधिक मात्रामें बढ़ जाते हैं तब २ प्रकृति भांति २ के मच्छर, मक्खी और कीटाणु आदि की उत्पत्ति उन्हीं स्थानों पर कर देती है, जिनका मुख्य उद्देश्य उन विभिन्न प्रकारों के विषों को नष्ट करना ही होता है।

क्रिया (i) अवस्था नं० १ में खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के अधूरे प्रयत्नों में !

क्रिया (ii) अवस्था नं० २ में अस्वस्थ पायन में !

क्रिया (iii) अवस्था नं० ३ में विष निर्माण के अधूरे प्रयोगों में !

इन प्रकृति के कीटाणुओं द्वारा विष दो प्रकार से नष्ट किये जाते है

(i) कीटाणु शरीर में प्रवेश करके विषों को उपयोगी पदार्थों में बदल देते हैं :

(ii) कीटाणु अपने शरीर से कुछ ऐसे रसायनिक पदार्थ उत्पन्न करके बिषों में मिला देते हैं जो इन विषों को उपयोगी पदार्थों में बदल देते हैं: जैसे शहद की मक्खी भांति भांति के रसों को चूस कर मिठे शहद में परिवर्त्तन कर देती है !

हम इन कीटाणुओं के कार्यों का विस्तृत रूप से यहां वर्णन नहीं करेंगे वरन् उन्हें फिर कभी बतायेंगे ! **अतः किसी विशेष प्रकार के कीटाणुओं को किसी विशेष स्थानपर किसी विशेष समय पाया जाना यह सम्बोधित करता है कि उस स्थान पर किसी विशेष प्रकार का विष साधारण मर्यादा से अधिक मात्रा में उत्पन्न होगया है।**

साधारणतया स्वस्थ मनुष्य की नाक, एक प्रकार वायु मन्डल में बिष मापक यन्त्र है! जिससे साधारणतया यह ज्ञात हो जाता है (सूंघने पर) कि किसी स्थान का विष पर्याप्त सीमा तक है या उससे अधिक हो गया है यद्यपि यह आवश्यक नहीं चूंकि बहुत से बिष अधिक विषाक्त सीमा के पहुंचने पर दुरगन्ध रहित हो जाते हैं।

७ भारतीय स्वास्थ सम्बन्धी इन्जीनयरों को इन कूड़ों के ढेर, तथा नालयों के सड़े हुये पानी के इन विषों की सफाई की उतनी चिन्ता नथी जितनी उन विषों के मूलनाश करने और उन से बिषक्त हुई वातावर्ण की स्वच्छता करने की चिन्ता न थी ।। उन्हों ने लोगों को, इन ढेरों को, केवल शीघ्रतः नष्ट करने का आदेश दे दिया था ! उन्हें दूर के स्थानों पर जङ्गलों में लेजाकर गढ़ों में डाल कर बन्द करने का प्रयोग बतादिया था ! और जब तक घरों में रहें, बंद बरतनों

में ढक कर और कम से कम समय तक रखने का आदेश भी दे दिया था! सबसे अधिक महत्व उन्होंने विषाक्त वायु की स्वच्छता करने को दिया था जैसा कि उनका विचार था और ठीक भी था कि यह विषेली वायु तमाम वायु मंडल को विषाक्त कर देगी और मनुष्यों के स्वास्थ को शीघ्र नष्ट कर देगी!

भारीतय वैज्ञानिकों ने बताया है कि मनुष्य बिना भोजन ३०-४० दिन तक जीवित रह सकता है, बिना जल केवल ३०-४० घंटे ही जीवित रह सकता है परन्तु बिना वायु २०-४० सेकन्ड भी जीवित रहना दुर्लभ है! इसके अतिरिक्त वायु एक स्थान से दूसरे स्थान को बहती रहती है और इसके विषाक्त होने के उपरान्त यदि शीघ्र ही इसका विष नष्ट करके इसको स्वच्छ न किया गया तो रोग उत्पत्ति करने वाले विष कणों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अति शीघ्रता से फैला देती है! यही कारण है कि भारतीय वैज्ञानिक केवल जल और वायु तथा यूनानी विद्वान आबो हवा की ही स्वच्छता पर अधिक ध्यान देते रहे। यही कारण है कि उन्होंने घरों के बाहर खुले चौकों में अपने घरो में, प्रति दिन एक या दो बार अंगीठी में अग्नि जलाने और उसे कम से कम १ घन्टा जलती रहने देने के सिद्धान्त को अपनाया! इस क्रिया को हिन्दुओं ने धार्मिक स्वरूप देकर अग्नि होत्र या हवन के नाम से पुकारा!

हम देखते हैं कि जब एक बस्ती में, एक समय में सब घरों में आग जलती है तो हर अंगीठी के ऊपर वायु मंडल में कुछ ऊंचाई तक (जो गर्मी पर निभर है) एक प्रकार का हल्की वायु या शून्य का एक स्तम्भ सा बन जाता है अगर उसमें होकर विषाक्त वायु जो कि धरातल पर मनुष्यों की बस्ती में पैदा की हुई होती है, ऊपर वायु मंडल में निकल जाती है और उसके स्थान को ऊपर के वायु मंडल की स्वच्छ वायु नीचे उतर कर ले लेती है! और इस प्रकार सहस्रों घरो की अग्नि आस

पास की दूषित वायु को ऊपर उठाकर ऊपर से स्वच्छ वायु नीचे उतार लाती है ! इस क्रिया से अधिकाँश दूषित वायु का विष निर्वाण भी ताप के कारण हो जाता है ! इसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ जैसे घी, शक्कर, अन्न आदि जिनका धूम्र अनेक विषों को नष्ट करने में लाभकारी होता है, उनका भी प्रयोग साथ ही साथ होजाता है ! ये सब क्रियाएँ मनुष्य के स्वास्थ पर बड़ा प्रभाव डालती हैं और जिसकी महत्वता वर्तमान वैज्ञानिक अब धीरे धीरे समझ रहे हैं !

प्रत्येक घर में थोड़ी मात्रा में नित्य प्रति जलाने के अतिरिक्त कभी कभी विशेष विषाक्त ऋतुओं में, लोग बड़े बड़े ढ़ेरों में भी आग जलाया करते थे ! ये ढ़ेर, चौराहों पर लगाये जाते थे और ४, ६ घन्टे तक जलते रहते थे और कभी कभी और भी अधिक देर तक जलते रहते थे ! यह क्रिया किसी किसी स्थान पर प्रतिदिन, कहीं २ नियत समय पर प्रयोग में लाई जाती थी और यहाँ तक कि हिन्दुओं की होली भी एक नियत समय पर आग जलाने की इसी प्रकार की प्रथाओं में से एक है ! जिसे धार्मिक रूप दे दिता गया है और जिसमें बड़ी मात्रा में लकड़ी के ढ़ेर सड़कों के चौराहों, पर और अधिक घनी बस्तीओं में मौहल्लों के चौराहों पर जलाये जाते हैं ! और इसके धार्मिक रूप दे देने के कारण भारत वासी इसका हर स्थान पर उपयोग करते हैं ! इन ढ़ेरों में लकड़ी १२ से ३० घन्टों तक बराबर जलती रहती है ! इस सबका मुख्य उद्देश क्या है, हम निम्न लिखित पंक्तियों में विस्तृत रूप से वर्णन करेंगे !

घने बसे स्थानों में एक साथ बड़े बड़े लकड़ी के ढ़ेर जलाकर यह प्रचन्ड अग्नि उत्पन्न कर और उसे १२ से ३० घन्टों तक जलती रहने देकर उसका सबसे अधिक लाभ लेना था ! यह प्रयोग पूर्णतया स्वास्थ रक्षा सम्बन्धी है और इसे धार्मिक रूप देकर प्रति वर्ष मनाया जाता है ! यह अग्नि की सैकड़ों फीट उंची लपटों से वायु मंडल

की भूस्थल छूती हुई वायु की तह में एक बड़े विशाल परिमाण का शून्य अथवा हलकी वायु का स्तम्भ बन जाती है, जिसके द्वारा बहुत बड़े परिमाण में विषाक्त वायु भूस्थल पर से निकल कर ऊपर के वायु मंडल में प्रवेश कर जाती है और ऊपर की शुद्ध वायु उसके स्थान को लेने के लिये भूस्थल पर उतर आती है ! इस प्रचण्ड अग्नि के ऊपर वायु में उत्पन्न हुये शून्य के स्तम्भ में वायु बहुत हलकी हो जाती है और यही कारण है कि वह अगल बगल की, भूस्थल पर से विषाक्त वायु को अपने भीतर खीच लेती है ! फिर वहां पर विशेष तापलगने के कारण यह विषाक्त वायु ताप से शोधन होने के अतिरिक्त हलकी भी हो जाती है और स्तम्भ की चोटी की ओर ऊपर को उड़कर वायु मंडल में प्रवेश कर जाती है ! इन होलों के सहस्रों प्रचण्ड अग्नि के, एक समय में प्रत्येक स्थान पर, जलते हुये ढेरों का परिणाम यह होता है कि बड़े से बड़े शहरों तथा बस्तियों के अन्दर और मीलों चारों तरफ की अशुद्ध, और विषाक्त वायु भूस्थल पर इन स्तम्भों की ओर आकर्षित हो कर, स्तम्भों रूपी विशाल छिद्रों द्वारा वायु मंडल की ऊपर की तह में निकल जाती है ! और अपना स्थान वायु मंडल के ऊपर की तहों की शुद्ध वायु को दे देती है ! इस प्रकार के अग्नि के ढेर जलाकर वायु में कृतिम तीव्र गति उत्पन्न करने से, जो कई घन्टों तक वायु को भूस्थल से खीचती रहती है और ऊपर फेंकती रहती है ! परिणाम यह होता है कि बस्तियों की अनेक कोठरीयों गढ़ों, बन्द नालियों और चूहों के सूराखों तक की बन्द और विषाक्त वायु इस क्रिया से खेंच कर शुद्ध करदी जाती है और उस के स्थान पर शुद्ध वायु फेंक दी जाती है ! इस क्रिया से भूस्थल से छूती हुई वायु की तह में जिसमें बहुत सा अंश विषाक्त वायु का होता है, प्रत्येक स्थान पर शून्य के सूराख बनाकर एक प्रकार की छलनी सी बना दी जाती है जिससे सूराखों में से भूस्थल की भारी विषाक्त वायु ऊपर निकल जाती है और ऊपर की हल्की शुद्ध वायु उसके स्थान पर नीचे भेज दी

जाती है ! इन प्रत्येक स्थानों पर जलती हुइ अग्नि के ढेरों से वायु मंडल में मीलों लम्बी और मीलों चौड़ी छलनी बन जाती है जिससे शहरों और गांवों के ऊपर के समस्त वायु मंडल में हलचल पैदा कर दी जाती है और विषाक्त वायु हटा कर स्वच्छ वायु लाई जाती है !

अनेकों स्थानों पर, इस प्रचन्ड अग्नि के ढ़ेरों को जलाने की प्रथा को, वर्ष में फागुन और चैत के मास का ही नियत समय देकर, भारतीय वैज्ञानिकों ने इस महान् वायु शोधक प्रयोग में और भी चार चाँद लगा दिये और वर्ष भर में यही दो मास ऐसे होते हैं जिसमें सड़ाव गलाव, मध्यान तापक्रम होने के कारण, भूस्थल पर बहुत तीव्रता से होता है और जिसके कारण वायु मंडल अधिक विषाक्त होता है और अनेकों प्रकार के छूत सम्बधी रोगों की उत्पत्ती होती है ! जैसे चेचक प्लेग आदि ! ऐसे मध्यान ताप क्रम का वष भर में एक समय और भी आता है जो क्वार, कार्तिक के मासों में पड़ता है परन्तु इन दोनों में विशेष अन्तर यह होता है कि क्वार कार्तिक में भूस्थल का वायु मंडल, ग्रीष्म ऋतु के कुछ ही पहले व्यतीत हो जाने के कारण, इतना विषाक्त नहीं होता जितना कि फागुन, चैत में ! इसी कारण से यह वायु शोधक प्रयोग जो होली के नाम से पुकारा गया है इन विशेष मासों में किया जाता है !

संक्षिप्त में यह, भूस्थल की विषाक्त वायु को हटाकर ऊपर की वायु मंडल की तह में फेंक देने वाला यह प्रयोग उस विषाक्त वायु को भूस्थल से हटाकर उपर की तहों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर फेंक ही नहीं देता वरन् शुद्ध भी कर देता है !

८ भारतीय वैज्ञानिकों को केवल रोगों को चिकित्सा का औषधि द्वारा ही ठीक करना ज्ञात न था, वरन् भांति भांति की जड़ी बूटियां इसी अग्नि में जलाकर उनके धूम्र द्वारा मनुष्यों के स्वास्थ बृद्धी को विधियां भी ज्ञात थीं ! ये विधियां वर्तमान वैज्ञानिकों को ज्ञात होती

नहीं जान पड़ती है परन्तु अब यह लोग भी शक्कर तथा अन्य कुछ वस्तुओं के धूम्र का लाभ कुछ कुछ जानने लगे हैं !

६ गांव वाले अपने निवास स्थानों में अलाव (सूखी पत्तियों, लकड़ियों और गोबर आदि के ढ़ेरों) में आग लगाकर आस पास की धरातल की वायु को स्वच्छ कर लेते हैं ! यद्यिपि उन्हें इस कार्य की महत्वता का ज्ञान नहीं परन्तु उनका यह वायु शोधक कार्य विज्ञान से परिपूर्ण है !

१० विषाक्त पदार्थों को नाश (छिन्न भिन्न) करना और गन्दगी को हटाना !

दो प्रकार से गन्दगी और गन्दगी से पैदा हुये विषों को नष्ट किया जा सकता है !

(i) गलाव सड़ाव से (गलाकर)

(ii) दह्न क्रिया से (जलाकर)

यह हम प्रथम ही कह चुके हैं कि बनास्पतिक और माँसिक पदार्थ अपने पैदा होने की घड़ी से अपनी नष्टता को पहुंचने की घड़ी तक और (नाज फल आदि अपने पेड़ों से अलग होने की घड़ी से नष्ट होने की घड़ी तक) न्यूनाधिक मात्रा में, गलाव और सड़ाव के प्रभाव से बराबर क्षीण होते रहते हैं और यह क्रिया जब तक बराबर जारी रहती है जब तक कि पदार्थ का संसर्ग (नियमित मात्रा में) जल, वायु और अग्नि से रहता है !

अत: यदि इन तीनों तत्वों मे से एक का भी संसर्ग हटा लिया जाता है तो पदार्थ के गलाव सड़ाव के प्रभाव से क्षीणता की क्रिया बन्द हो जाती है और पदार्थ शुरक्षता की गति को प्राप्त हो जाता है ! इसी नियम का लाभ उठाते हुये विदेशी विज्ञानिकों ने पदार्थों को सुरक्षित रखने के केवल तीन ही प्रयोग वताये हैं !

(i) जलका संसर्ग हटाकर

(ii) वायु का संपर्ग हटाकर

(iii) अग्नि का संपर्ग हटाकर

बनास्पतिक तथा मांसिक पदार्थ ठीक है (मांस, नाज फल, दूध आदि) कुछ अंश जल, वायु और अग्नि का पहले से ही स्थित होता है ! इससे उस प्रदार्थ में स्यंम हीं गलाव सड़ाव की क्रिया उत्पन्न हो जाती है यदि उस पदार्थ का संपर्ग बाहरी जल, वायु अग्नि से होया नहो ! गलाव सड़ाव की क्रिया से बनास्पतिक और मांसिक पदार्थ जो शक्कर, नशाश्ते, चिकनाई, चर्बी, मांसिक अंश, अनेक प्रकार के नमक और थोडे जल की मात्रा से बने हुये होते हैं छिन्न भिन्न होकर इन पदार्थों में बदल जाते हैं ! यानी—

(i) शक्कर और नशाश्ते से ऐलकोहील, कार्बन डाईऑकसाइड़ और जल बन जाता है !

(ii) चर्बी या चिकनाई से फैटी ऐसिड़, गिल्सरीन साबुन आदि बन जाता है !

(iii) मांसिक अंश के पदार्थ से पैपटोन्स, ऐन्डोलस, सैक्टोंल्स, ब्यूट्रिक ऐसिड, कर्बान डाईऑक्साईड़ कीथेन्स, सलफ्रेटड हाईड्रोजन और जल बन जाता है !

यह सड़ाव गलाव की क्रिया जैसा उपर बताया जा चुका है बराबर जारी रहता है जब तक कि तीनों तत्वों जल, वायु और अग्नि का पदार्थ से संपर्ग बना रहना है और जब तक तीन तत्वों में से एक या अधिक तत्व का संपर्ग पदार्थ से हटा नहीं लिया जाता !

इस सड़ाव गलाव का क्रिया को थोड़े और बन्द जलवायु की संसर्गता अति तीव्र कर देती है। और ऐसे ही ६८ डिग्री से ६६ डिग्री फैरनहाईट ना ताप क्रम अति तीव्र कर देता है। इसके विपरीत प्रवाहित और अधिक प्रमाण के जलवायु की संसर्गता गति मन्द कर देती है और एक ओर ५० डिग्री दूसरी ओर १५० डिग्री फैरनहाईट का तापक्रम भी इस गति को मन्द कर देता है।

अर्थात जितना तापक्रम ५० डिग्री के लगभग एक ओर और १५० डिग्री के लगभग दूसरी ओर रहेगा उतनी ही क्रिया में मन्दता रहेगी और जितना यह तापक्रम ६८ डिग्री फैरनहाईट के पास आजावेगा उतनी ही इस सडाव गलाव की क्रिया में तीव्रता उत्पन्न हो जायगी।

११ इससे यह सारांश निकला कि मनुष्यों की स्वास्थ रक्षा के हेतु भूस्थल पर निम्नलिखित नियमों का पालन होना आवश्यक है।

(क) अवस्था नं० १ में सब खाद्य पदार्थ और अन्य उपयोगी पदार्थों का, जो बनास्पतिक तथा मांसिक पदार्थों से बने होते हैं, ऐसी अवस्था में सुरक्षित रखना जिस में प्रथम तो सडाव गलाव की क्रिया का कोई प्रभाव ही न पड़ सके और यह क्रिया बिल्कुल बन्द रहे और यदि ऐसा करने का साधन मौजूद न हो तो ऐसे साधनों का उपयोग करना जिसमें यह क्रिया न्यून से न्यून हो।

(ख) अवस्था नं० २ में जो शरीर में खाद्य पदार्थों को खाकर पाचन करने की अवस्था होती है उस में मनुष्यों की पाचन शक्ति को अति उत्तम रखना जिस से पाचन शक्ति द्वारा खाद्य पदार्थ मनुष्यों के शरीरों के भीतर शीघ्र पचकर (इस अवस्था नं० २ में पाचन क्रिया गलाव सडाव की ही क्रिया का एक विशेष रूप है) उन पदार्थों में से स्वस्थ उपयोगी और रक्त पैदा करने वाला अंश शीघ्रता से शरीर में रहकर खाद्य पदार्थों का बाकी अंश विष्टा आदि के रूप में परिणित होकर शरीर से शीघ्र निकल जावे।

(ग) अवस्था नं० ३ में मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के शरीर से निकली हुई विष्टा आदि को इस प्रकार से सुरक्षित रखना कि वह रहने के स्थानों के वायु मंडल को विषाक्त न बना सके अर्थात या तो इनको खुली वायु जैसे जङ्गलों आदि में शरीर से निकालना और यदि ऐसा करना असम्भव हो तो घरो के भीतर इन विष्टाओं को शरीर से निकलते ही ऐसे बरतनो में बन्द करके रखना जिससे घरों के अन्दर की जलवायु पर इस गन्दगी अथवा विष्टा का कोई प्रभाव न पड

सके और यदि पडे तो न्यून से न्यून पडे और फिर इन बन्द बरतनों को दूरी पर ले जा कर शीघ्र से शीघ्र गढों में डाल कर बन्द कर देना और गलाव सडाव की प्रबल क्रिया से विष्टा को छिन्न भिन्न कर देना और ऐसे साधनों द्वारा इस क्रिया को करना कि जिसमें विष्टा का खुली वायु से न्यून से न्यून संसर्ग होता है।

यदि सम्भव हो तो विष्टा को शरीर से निकलते ही ऐसे स्थान में डाल देना जहाँ जल वायु और अग्नि तीनों की संसर्गता इकट्ठी न हो जैसे सैनीटरी फ्लशकमोड, जिनमें वायु प्रवेश नहीं करती, इस कारण विष्टा उसके नलों में सुरक्षित रहती है।

विष्टा के गड्ढों में भी गलाव सडाव की क्रिया बडे वेग से कार्य करती है और साथ साथ ही इस विष्टा के विषाक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न करने में कीडों की प्राकृतिक फौज पैदा हो कर अपना नियमित कार्य करती है।

(घ) इस प्रकार से १० और ११ प्रकरण में बताए हुए प्रयोगों द्वारा गन्दगी और विष्टा के विषाक्त पदार्थों का नाश (छिन्न भिन्नता मनुष्य कृत उपयोगों से जो गलाव सडाव पैदा करके पदार्थों का नाश करते हैं, किया जाता है और यह गलाव सडाव ऐसे बन्द गड्ढों में किया जाता है जहाँ बाहरी जल अथवा वायु नहीं पहुंच सकती।

(ङ) साधारणतया गलाव सडाव की क्रिया के प्रयोग से मनुष्यों की विष्टा और अन्य अनुपयोगी पदार्थों का ही नाश किया जाता है जो अवस्था नं० ३ के आरम्भ में उत्पन्न होते हैं। इस प्रयोग से अवस्था नं० १ के सुरक्षित खाद्य पदार्थों का भी नाश किया जा सकता है। जैसे नाज को सडा कर नष्ट कर देना अथवा अवस्था नं० १ से अवस्था नं० ३ में एक दम परिणित कर देना और अवस्था नं २ का पैदा ही न होने देना।

१२—दूसरा तरीका नष्ट (छिन्नता, भिन्नता) करने का जलाने की क्रिया से होता है और यह विधि पूर्ण रूप से और अति वेग से

पदार्थों को नष्ट करने वाला है। यह दहन क्रिया की विधि भारत में मृतक शरीरों को नष्ट करने में प्रयोग होती रही है। इसका गन्दगी और विष्टा को नाश करने में भी बहुत से स्थानों पर प्रयोग किया जाता है। इसमें वायु मण्डल के कुछ अंशों में विषाक्त वायु जो पदार्थों के दहन से उत्पन्न होती है, फैलती है परन्तु वह शीघ्र ही नष्ट होकर वायु मण्डल में लोप होजाती है। इस दहन क्रिया का प्रयोग साधरणतया विष्टा के नष्ट करने में नहीं किया जाता इसका एक कारण यह भी है कि विष्टा खेतों और बागों के वास्ते खाद में परिणित की जाती है और दहन प्रयोग से यह खाद की प्राप्ती नहीं हो सकती जो भारत में अच्छी उपज के लिये नितांत आवश्यक है।

भाग न० १०, ११ और १२ में बताए हुए बनास्पतिक और मांसिक पदार्थों का नाश (छिन्न भिन्न) करने के दो प्रकार के साधनों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का साधन और है जो भारतवर्ष में बहुत प्राचीनकाल से प्रयोग में लायाजाता रहा है। यह साधन बहुत ही लाभ दायक, कम खर्च से होने वाला है और अत्यन्त सरल है जो गांवों जसी दूर दूर पर बसी हुई बस्तियों के लिये तो, परमोपयोगी साधन है। इस साधन को "बिकृणता" कहते हैं। यदि यह तीसरा साधन एक प्रकार से सड़ाव गलाव के उप्रलिखित साधन का ही एक प्रकार है परन्तु हम यहां इस साधन को अति हितकारी और कम खर्च से होने के कारण एक तीसरे साधन के नाम से पुकारते हैं।

१३—इस प्रकार से बनास्पतिक और मांसिक पदार्थों को नष्ट (छिन्न भिन्न) कर तीन प्रकार के साधन होते हैं।

(i) मनुष्य कृत बन्द स्थान में गलाव सड़ाव

(ii) विकरण

(iii) दहन क्रिया या जलाना

इन तीनों क्रियाओं में दहन क्रिया से नष्ट करने के विधि सर्व श्रेष्ट है। परन्तु कुछ कारणों से इस साधन का प्रयोग एक सीमा में करना ही उपयोगी है।

१४—दो साधन अर्थात एक तो बन्द स्थान में गलाव सड़ाव पैदा कर के पदार्थ का नाश करना और दूसरा विकरण क्रिया से दूषित और विषाक्त पदार्थों का नाश करना (छिन्न भिन्न करके) यह साधारणतया मनुष्यों के लिये परमोपयोगी हैं। इन साधनों का प्रयोग देश और काल के अनुकूल निम्नलिखित नियमों के साथ करना चाहिये। शहरों की घनी बस्तियों में पहला अर्थात बन्द स्थान में गलाव सड़ाव का साधन दूसरे विकरण क्रिया के साधन से अधिक लाभदायक है। ग्रामों और छिद्रा बस्तियों में दूसरे प्रकार का अर्थात विकरण क्रिया का साधन ही अधिक हितकारी है।

(अ) साधन नं० १ (गलाव सड़ाव को बन्द स्थान में करना) में गन्दगी और विषाक्त पदार्थों का, जो साधारणतया विष्ठा से उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों के शरीरों से अलग होते ही इनको, जैसा प्रथम ही बताया जा चुका है बन्द बक्सों या बरतनों में बन्द करके अलग सुरक्षित स्थानों में एक या दो घन्टे रख लिया जाता है और फिर वहां से शीघ्र से शीघ्र विष्टा के गड्ढों में जो बस्तियों से दूरी पर होते हैं, लेजाकर उनमें खालि कर दिया जाता है। जिस से उनके अन्दर की दूषित वायु बाहर निकलकर वायु मण्डल को दूषित न कर सके।

(ब) साधन नं० २ (विकरण क्रिया में) शरीर से निकलने वाली विष्टा और अन्य दूषित पदार्थ जिनमें तीनों प्रकार के अर्थात स्थूल, तरल और गैसीय पदार्थ होते हैं जैसे मल मूत्र गन्दी वायु आदि, इनको शरीर से निकाल कर बड़े पृथ्वी' जल और वायु के ढ़ेरों में मिला दिया जाता है जहां पर वह अति न्यून मात्रा में विषाक्त होने और एक अधिक परिमाण के ढ़ेर में मिलने के कारण अधिक परिमाण के ढ़ेरों को दूषित नहीं बना सकते और थोड़े ही समय (कुछ क्षणों में ही) प्राकृतिक नियमों के अनुसार उन में न्यून मात्रा में रहने वाले विष का नाश स्वयं ही होजाता है इस विकरण क्रिया से भूस्थल की पृथ्वी की

वायु अथवा जल दूषित नहीं होते। इसका एक कारण यह भी है कि यह विष्टा और इस से विषाक्त जल, वायु उत्पन्न होते ही वायु मण्डल की खुली हवा या नदियों के बहते हुए जल या भूस्थल के जङ्गलों की विशाल स्थलों में मिला दिये जाते हैं। इन विषाक्त पदार्थों का परिमाण अति न्यून होता है जिसका प्रभाव विशाल परिमाण वाले खुली वायु में रहने वाले पृथ्वी स्थल, जल और वायु पर कुछ नहीं पड़ता और जो थोड़ा बहुत पड़ता भी है उसका नाश स्वयं ही शीघ्र ही हो जाता है और इसी कारण से मनुष्यों के रहने वाली बस्तियों का वातावरण बिल्कुल शुद्ध बना रहता है।

यह अति न्यून मात्रा में मिलने वाले विषाक्त पदार्थ प्राकृतिक साधनों द्वारा (वर्षा, धूप, वायु दरियाओं के जल के प्रवाह आदि से शुद्ध होता रहता है यथा शक्ति कीड़ों की फौज द्वारा भी शुद्ध कर दिया जाता है।

यह साधन नं० २ का प्रयोग केवल छिदी बसी हुई बस्तियों और ग्रामों में ही हो सकता है, घनी बसी हुई बस्तियों वा शहरों में नहीं।

१५—प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों और स्वास्थ सम्बंधी इन्जीन्यरों के बताये हुये कुछ स्वास्थ्य रक्षा सम्बंधी नियम।

(क) बस्तियों के और उनके पड़ौस में विषाक्त पदार्थों का जो साधारणतः मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के मूत्र विष्टा और अन्य दूषित पदार्थों की, जो उनके शरीर से निकलते रहते हैं, उत्पत्ति को रोकना अथवा कम करना।

(ख) विषाक्त पदार्थों की उत्पत्ति हो जाने पर उन को शीघ्र से शीघ्र पैरे १३ और १४ में तीन प्रकार के नाश करने के साधनों में से किसी भी प्रकार के साधन से नष्ट (छिन्न भिन्न) करना। दहन क्रिया से

विषाक्त पदार्थों को जिन में विशेषत: स्थूल पदार्थ ही होते हैं किसी प्रकार की प्रज्वलित अग्नि में जला दिया जाता है।

इन में दहन के साधनों को छोड़ कर बाकी जो दो प्रकार के साधन अर्थात [(i) बन्द स्थान में सड़ाव गलाव करना और (ii) विकरण क्रिया से दूषित पदार्थों का नाश करना है] इन दोनों प्रकार के साधनों का हम निम्नलिखित पंक्तियों में विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे चूंकि यही दो प्रकार के साधन हैं जिनका प्रयोग जनता को सरल और हितकारी है।

(i) दहन दूषित पदार्थों और कूड़े के ढेरों को अग्नि द्वारा जला दिया जाता है

(ii) **गलाव सड़ाव**—बन्द स्थान में सड़ाव गलाव के साधन में प्रथम विष्टा और अन्य दूषित पदार्थों को शरीर से अलग होने पर तुरन्त ही सर बन्द बक्सों या बरतनों में जिनमें से वायु निकल न सके बन्द कर लिया जाता है और उनको विष्ठा के गढ़ों में जो बस्तियों से कुछ ही दूरी पर जङ्गलों में होते हैं, लेजाकर उनमें डालकर बन्द कर दिया जाता है।

यदि विष्ठा को बस्तियों से बाहर इन सरबन्द बक्सों या बरतनों द्वारा विष्ठा गढ़ों में लेजाना किन्हीं कारणों से न किया जासके (जिनमें अधिक खर्च होने का कारण एक है, बस्ती का बहुत घना और जङ्गलों से दूर होना दूसरा कारण है और अज्ञानता का कारण तीसरा है।) तो बस्तियों में ही सरबन्द पक्के हौज बना कर सड़ाव गलाव की क्रिया से विष्ठा का नाश (छिन्न भिन्न) किया जा सकता है जिनका प्रचार भी आधुनिक काल में बहुत बढ़ता जा रहा है। यह मल शोधक हौज बनाने में गन्दी हवा को वायु मंडल

में निकालने वाले नलों का लगाना परमावश्यक है। यह ऊंचे से ऊचे मकानों की छत से भी ऊंचे लेजाये जासकते हैं।

यद्यपि यह बस्तियों में मल शोधक हौज बनाने का प्रचार प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है परन्तु हम इसपर भी टीका टिप्पणी न करके केवल इतना अनुरोध अवश्य करेंगे कि जहाँ भी ऐसे मल-शोधक हौज बस्तियों में बनाये जावें यह पक्की मोटे सीमेंट की दीवारों के होने चाहिये। इनमें जल शोषण शक्ति कदापि किञ्चित मात्र भी न होनी चाहिये और इनकी हवा बिल्कुल बन्द होनी चाहिये गन्दी हवा के नल पूरी आवश्यकतानुसार ऊंचाई के लगाने चाहिये और इनसे जो नालियें निकलें, उनमें मुड़ा हुआ मुंह अवश्य लगाया जावे। यदि ऐसा न किया गया तो इस से अति हानि होगी और इस से बस्तियों का वातावरण शीघ्र ही दूषित बन जावेगा।

विष्टा को इन बन्द हौजों या मल शोधक हौजों में डालकर जो कम घनी बस्तियोंके भीतर ही मकानों के फरशों के नीचे बनाये जाते हैं, नष्ट करने की प्रथा, आधुनिक वैज्ञानिकों ने आरम्भ की है, आधुनिक काल में बहुत प्रचलित है। इस क्रिया में विषाक्त पदार्थों का नाश कीड़ों की उत्पत्ति करके उनके द्वारा ही किया जाता है और इस क्रिया से बन्द हौजों में सड़ाव गलाव इस तीव्रता से उत्पन्न कर दिया जाता है कि शीघ्र ही प्रकृति को अपने नियमानुकूल वहाँ पर लाखों कीड़े उस विष्टा को शीघ्र नष्ट करने के लिये उत्पन्न करने पड़ते हैं। इस कारण घरों में रहने घुसने वाले मनुष्यों के स्वार्थ हित में यह परमावश्यक है कि इन बन्द हौजों में से किसी मात्रा में भी विषाक्त वायु घरों में न निकल जावे वरन् परिणाम उलटा होगा! साधारणतया सफाई में निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिये।

(क) विष्टा की उत्पत्ति होते ही उसको बन्द बक्सों में जिनसे घरों की हवा का संसर्ग न हो बन्द कर लिया जावे।

(ख) इन बन्द विष्टा के बक्सों को दूर जङ्गल में विष्टा गड्ढा में ले जाकर खाली कर दिया जावे।

(ग) उन विष्टा के गड्ढों को जिनमें विष्टा बक्सों से डाली गई है मोटी मिट्टी की तह डाल कर, ढक दिया जावे जिस से उसका भूस्थल की वायु से कोई संसर्ग न रहे।

(घ) जहाँ विष्टा के नष्ट करने के लिये, पक्के हौज बस्तियों में घरों के नीचे फरशों में बनाये जावें वहाँ पर यह हौज पक्की दीवारों के हों जिन मे जल सोखन शक्ति कदापि न हो और इन होजों के मुंह हर समय बन्द रक्खे जावें जिससे विषाक्त वायु का संचार न हो। सके! और इनके भीतर विषाक्त वायु निकलने के लिये इन हौजों की छतों में वायु बन्धित नल लगाये जावें जिनसे हौजों को विषाक्त वायु भूस्थल को मनुष्यों के स्वाँस लेने की वायु की तह से अलग रहती हुई वायुमंडल के ऊपरकी तह में विचलित हो जावे!

(iii) विकृण क्रिया में मनुष्य और उसके पालतू जानवरों की विष्टा और अन्य दूषित पदार्थ ज्यों ही शरीर से अलग होते हैं उनको पृथ्वी जल और वायु के अथाह समुद्रों स्थूल विष्टा को विशाल जंगलों में जल को विशाल नदियों में, तालाबों में और वायु को भूस्थल की वायु मंडल में) में मिला दिया जाता है और वहाँ पर प्राकृतिक साधनों से शुद्ध होने के लिये छोड दिया जाता है! विषाक्त पदार्थों की मात्रा न्यून होने के कारण उससे बस्तियों के वातावरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडता जैसे ०४ फी सदी तथा कार्बन डाईऑक्साईड वायु मंडल में मनुष्यों के स्वास्थ पर कोई दूषित प्रभाव उत्पन्न नही करती! इस साधन

का प्रयोग ६५ प्रति सैकडा मनुष्य करते हैं यद्यपि इसकी उच्यता के महत्व का अनुभव बहुत कम वैज्ञानिकों को है।

इस साधना के बल पर हम केवल इतना कह कर इस विषय को छोड देते हैं कि ग्रामो में पक्की नालियें और पक्के मल शोधक नल स्वास्थ के नियमो के विरुद्ध होंगे ! एक छप्पर से ढके हुये ग्रामीय मकान का जिसमें फरश भी कच्चा हो, थोडी मात्रा में मल मूत्र की दुर्गंधी से वायु इतनी दूषित नहीं बनती जितनी एक शहरी पक्के मकान की जिसका फर्श भी पक्का सीमैन्ट का हो ! बन जाती है।

भारतीय विज्ञान के नियमो के मतानुसार शहरी पक्के मकान में साधन नं० १ अर्थात मल मूत्र या विष्टा को एकत्रित करके बन्द स्थान में सड़ाव गलाव की क्रिया का प्रयोग करना ही उपयोगी है और ग्रामीय कच्चे मकान में इसके बिपरीत विकृण क्रिया का प्रयोग करना ही अति लाभकार है !

अलिखित विषाक्त पदार्थों की उत्पत्ति को कम करने और उपस्थित विषाक्त पदार्थों का नाश करने की क्रियाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित क्रियाओं के प्रयोग द्वारा भूस्थल के वातावरण की शुद्धि करना स्वास्थ सम्बन्धी नियमों की पूर्ती के हेतु परमावश्यक है।

भूस्थल पर मनुष्यों के शरीरों और उनके पालतू जानवरों के शरीरों से पैदा हुय विषाक्त पदार्थों मे जो तीन प्रकार के होते हैं स्थूल (जैसे बिष्ठा), तरल (जैसे मूत्र) और गैसीय (जैसे गन्दी वायु) ! भाँति २ की बिमारियें पैदा करने में स्थूल पदार्थ इतने हानिकारक नहीं होते जितने तरल और गैसीय पदार्थ अर्थात जल और वायु ! गन्दा जल इतना हानिकारक नहीं होता जितनी गन्दी वायु हानिकारक होती है।

विष्ठा जैसे स्थूल पदार्थ भी स्थूल होने के कारण अपना विषाक्त प्रभाव एक विशेष स्थान पर परिमित करके रखते हैं! तरल पदार्थ जैसे गन्दा जल (नालियों का सडा हुआ पानी) भी प्रवाह गति के कारण अपने विषाक्त प्रभाव को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है। यदि यह गन्दा जल एक स्थान में एकत्रित हो तो फिर प्रभाव एक देशी ही रहता है गन्दी वायु हर समय गतिवान और प्रवाह शील होने के कारण सब से अधिक हानि उत्पन्न करती है और न केवल अपने ही विषाक्त प्रभाव को एक स्थान से लेजाकर दूसरे स्थान में फैलाती है वरन् अनेक गंदे स्थूल और तरल विषाक्त पदार्थों के संसर्ग से जहाँ वह बहती है, अनेक प्रकार के विष शोषण करके अपनी प्रवाह गति द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है और वहाँ पर अच्छे वातावरण को भी दूषित कर देता है।

इस काण जहाँ यह परमावश्यक है कि स्थूल और तरल विष्टा के ढेरों का शीघ्र नाश (छिन्न भिन्न) करने में कोई न्यूनता नही रहनी चाहिये वहाँ यह भी परमावश्यक है कि देश और काल के विचार से वायु की शुद्धि करने पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जावे! इन वायु की शुद्धि करने के साधनों का प्रयोग, विशेषत: उन स्थानों में करते रहना चाहिये जहाँ वायु में विषाक्त पदार्थों के मिश्रण होने की अधिक सम्भावना है जैसे तराई और आसाम प्रदेश के भाग! ये प्रयोग विशेषत: उन मौसमों में करने चाहिये जिनमें वायु मण्डल का साधारण तापक्रम एक ओर ५० और दूसरी ओर १५० से चलकर ६८० फै० के लग भग पहुंचता है! जैसे क्वार कार्तिक में एक बार और फागुन चैत के मासो में दूसरी बार पहुंचता है!

दूषित वायु अथवा जल को, जो रुके हुवे बन्द स्थानों पर विषाक्त वायु इकट्ठी हो जाने से अथवा जल इकट्ठा हो जाने से बन जते हैं, मनुष्य कृत क्रियाओं से शुद्धि कर देनी परमावश्यक है!

आधुनिक वैज्ञानिकों और स्वास्थ्य सम्बन्धी इन्जिनयरों के विचारानुसार महामारियों और फैलने वाली बीमारियों के प्रमुख कारण

१ इन वैज्ञानिकों का अटल विश्वास है कि प्रत्येक बीमारी छूत के कारण ही फैलती है जिसको उत्पन्न करने का मूल कारण छोटे छोटे कीटाणु और बैक्टीरिया होते हैं !

(क) हर एक बीमारी के अलग अलग कीटाणु होते हैं जो मनुष्यों के महान शत्रु हैं और मनुष्यों पर हमला करके अनेकों बीमारियां फैलाते हैं ! ये कीटाणु ही स्वयं प्रत्येक बीमारी का कारण हैं ! विशेषतः कीटाणु प्लेग, हैजा, इनफ्लूइन्जा, कोढ, डिपथीरिया, मियादी बुखार, तपेदिक, कालीखाँसी और कई और भयकर बीमारियों के होते हैं !

(ख) ये कीटाणु भाँति भाँति के रूप आकार और परिमाणों के होते हैं और एक दूसरे के स्वभाव में भी नहीं मिलते।

(ग) ये कीटाणु विषाक्त पदार्थों से मनुष्य और जानवरों के मल और विष्ठा और अन्य गन्दगियों से उत्पन्न होते हैं !

(घ) ये कीटाणु स्वय विषाक्त होते हैं और मनुष्य के शरीर पर धावा करके रक्त की नालियों में चले जाते हैं और वहाँ घुस कर वह रक्त को विषाक्त बना देते हैं और प्रत्येक प्रकार की बीमारियों का विष शरीर में फैला देते हैं जिससे मनुष्य उन्ही बीमारियों का जिसके वह कीटाणु होते हैं रोग ग्रसित हो जाता है !

(ङ) ये कीटाणु साधारणतया तीन प्रकार के होते हैं
(I) वैसीली — जो लम्बे और गोल आकार के होते हैं

(II) कोलाई — जो गोलाकार ही होते है ;

(III) स्परीला — जो साँकल के आकार के होते हैं !

बैसोली दो प्रकार के, कोलाई पाँच प्रकार के और स्परीला दो प्रकार के होते हैं ! इन सब नौ प्रकार के कीटाणुओं की आकृति और आकार एक दूसरे से नहीं मिलता !

खाने के स्वभावानुकूल भी कीटाणु तीन प्रकार के होते हैं !

(I) पैरे साईट — जो जिवित जानवरों के शरीरों में होते हैं !

(II) स्प्रोनाईट — जो जानवरों की विष्टा में पाये जाते हैं !

(III) प्रोटो ट्रोफिक – यह एक विशेष प्रकार का कीटाणु है जो अन्य प्रकार के बनास्पतिक विषाक्त पदार्थों में पाया जाता है !

रहन सहन के स्वभावानुकूल कीटाणु दो प्रकार के होते हैं !

(i) वे कीटाणु जो वायु की अनुपस्थिती में जीवित रहें !

(ii) वे कीटाणु जो वायु की अनुपस्थिती में जीवित न रहें !

कार्य स्वभावानुकूल कीटाणु दो प्रकार के होते हैं !

(i) वे कीटाणु जो मनुष्यों के शरीर में पहुँच कर एक स्थान पर जम कर बैठ जाते हैं और वहां से शरीर के अनेकों भागों में विष बनाकर भेजते रहते हैं जसे जख्मों के कीटाणु !

(ii) वे कीटाणु जो शरीर के सब भागों में फैल जाते हैं जैसे प्लेग के कीडे, कोढ के कीडे !

(च) उत्पत्ति और बृद्धि— यह इस तीव्र गति से होती है कि केवल १० ही घंटो में एक कीटाणु से बीस लाख कीटाणुओं की उत्पत्ति और बृद्धि हो सकती है !

(छ) स्थान — ये कीटाणु पृथ्वी, जल और वायु में एक सा मिलते हैं !

२—ये कीटाणु किस प्रकार से बीमारियाँ फैलाते हैं।

(क) प्लेग का कीटाणु एक फुदकने वाला कीडा फ्ली (Flea) है जो सब प्रथम चूहों पर हमला करता है फिर चूहे उन कीटाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं और बीमारी को फैलाते हैं!

(ख) हैजे के कीटाणु प्राय: हैजे के रोगी के शरीर और उसकी विष्ठा से उत्पन्न होते हैं और वे खाद्य पदार्थों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को फैल जाते हैं! मक्खियाँ हैजे के कीटाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हैं चूंकि मक्खियाँ हैजे के रोगी की विष्ठा आदि पर बैठती हैं वहाँ से हजारों कीटाणु इन मक्खियों की टाँगों से चिपक जाते हैं और इन मक्खियों के साथ ही चले जाते हैं! जब ये मक्खियाँ दूसरे स्वस्थ मनुष्यों के खाने के पदार्थों पर बैठती हैं तो इन की टांगों से हैजे के कीटाणु उतर कर खाने के पदार्थों पर चिपट जाते हैं और जो फिर इन खाद्य पदार्थों को खाता है उसके शरीर के भीतर भी हैजे के कीटाणु साथ साथ चले जाते हैं और स्वस्थ शरीर को भी बिषाक्त बना देते हैं! शरीर में जाकर लाखों की तादाद में यह कीटाणु थोडे से ही समय में बढ जाते हैं!

(ग) इन्फ्लूइञ्जा के कीटाणु वायु द्वारा फैलते हैं!

(घ) मियादी बुखार के कीटाणु ?

(ङ) डिपथीरिया के कीटाणु ?

(च) तपेदिक के कीटाणु ?

३ मलेरिया ज्वर मच्छरों से फैलता है ?

(क) भारतवर्ष में करीब १५० प्रकार के मच्छर होते हैं!

(ख) इनमें से केवल ३७ प्रकार के मच्छर मलेरिया ज्वर फैलाते हैं

(ग) ये मच्छर अण्डे, पानी की सतह पर देते हैं।

(घ) ये मच्छर मनुष्यों के शरीर पर बैठ कर काट लेते हैं और अपने मुख से एक काँटे के द्वारा अपने शरीर से विष मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर देते हैं जहाँ जाकर विष मनुष्य के रक्त को विषाक्त कर देता है और मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति कर देता है।

४ फैलने वाली बीमारियों की रोक थाम और इलाज

(क) इन रोगों की चिकित्सा हमारे विषय से सम्बन्धित नहीं है अतः हम उसका वर्णन नही करेंगे !

(ख) रोगो का फैलना प्रत्यक प्रयोगों और विधियों से उनके कीटाणु का नाश करके किया जा सकता है ! कीटाणुओं का नाश करते समय उन बडी प्रकार के दूसरे कीडों और जानवर को भी नष्ट कर देना चाहिये जिनके द्वारा इन रोगो के कीटाणु एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचते हैं या पहुँचने का भ्रम भी हो जो निम्नलिखित कुछ दृष्टान्त से विदित होगा !

(i) प्लेग के कीटाणुओं को जो एक फुदकत हुई मक्खी (FLEA) के प्रकार होते हैं और जो भूस्थल से एक या सवा फुट से अधिक ऊंचे नहीं पहुंच सकते हैं, और चूहों पर हमला करते हैं इन्ही चूहों के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाये जाते हैं और इसी कारण से प्लेग का भयंकर रोग विस्तार से फैलता है ! इस कारण यह परमावश्यक है कि प्लेग के कीटाणुओं की नष्टता के हितार्थ इन चूहों को सर्व प्रथम नष्ट किया जावे ! इनको नष्ट अनेकों प्रयोगों द्वारा किया जा सकता है ! चूहों के मृतक शरीर या तो दूर के जङ्गलों में पृथ्वी में गड्ढे खोद कर दबा दिये जावें या जला दिये जावें !

(ग) मक्खियाँ हैजे और अन्य इसी प्रकार की बीमारियों के वमन और विष्ठा पर बैठती हैं और वहाँ से अपनी टांगो के ऊपर सहस्रो छोटे २ कीटाणुओं को जो उस विष्ठा में स्थित होते हैं चिपटा लाती हैं और जब दूसरे स्थानों पर खाद्य पदर्थों पर बैठती है तो वह कीटाणु मक्खियों की टाँगों से उतर कर खाद्य पदार्थों पर चले जाते हैं !

ये मच्छर अपने भीतर एक प्रकार का विष रखते हैं जिससे मलेरिया ज्वर उत्पन्न हो सकता है और जब ये मच्छर मनुष्यों को काट लेते हैं तो इनका विष मनुष्यों के शरीर में प्रवेश हो जाता है और इससे मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति हो जाती है।

इन्ही कारणों से मक्खियों और मच्छरो को किसी न किसी प्रयोग से नष्ट किया जाना चाहिये यदि वह प्रयोग रसायनिक हों अथवा किसी तीव्र गन्ध के विकृरण द्वारा किये जाते हों जैसे लिफ्ट या (F.U.T.) डी. डी. टी (D .D. T) के तरल पदार्थों का प्रयोग आधुनिक काल में बहुती प्रचलित है ! यदि कोई और प्रयोग तत्काल न हो सकता हो तो किसी डन्डे में एक छोटा सा टुकडा जाली का बांध कर उसीसे जितने मक्खियां मच्छरों का नाश हो सके, करना चाहिए।

हर वैज्ञानिकों या स्वास्थ सम्बन्धी इन्जिनियरों का मुख्य उद्देश्य और कार्य मक्खियों, मच्छरों, चूहों और अन्य सहस्रों प्रकार के कीटाणुओं का जो बीमारियें फैलाते हैं. नाश करना होना चाहिये।

आज कल के बहुत से वैज्ञानिक ऐसे ऐसे प्रयोग और कलों का आविष्कार करने में लगे हुये हैं जिनसे इन मनुष्य के शत्रुओं का नाश किया जा सके।

—०:(०।।०)०:—

--:कीटाणु सिद्धान्त का एक संक्षिप्त इतिहास:—

भिन्न २ बीमारियों तथा महा मारियों के फैलाने का कारण कीटाणु के होने का सिद्धान्त सर्व प्रथम १८४६ ई० से डा० काहन ने माना और फिर सन् १८५० ई० में डा० डारविन ने माना और सन् १८७६ ई० में डा० कौश ने जोर दे कर इस सिद्धान्त को एक बार फिर दुनिया के सामने रक्खा।

सर्व प्रथम सन् १८४६ ई० में डा० कनाह और सन् १८५० ई० में डा० डारबिन, जो दोनों बिदेशी यूरोप के रहने वाले थे उन्होंने कीटाणुओं का बीमारियों को फैलाने का सिद्धान्त दुनिया के आगे रक्खा और यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया किसी भी छूत को फैलाने वाली बीमारियों का मुख्य कारण उस बीमारी के कीटाणु होते हैं परन्तु उस समय के अन्य डाक्टरों भारतीय वैद्यों, हकीमों और स्वास्थ्य वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त की ओर किंचित मात्र भी ध्यान नहीं दिया।

दूसरी बार १८७५ ई० में डा० कौश जो एक जर्मन वैज्ञानिक थे, उन्होंने फिर दुनिया के आगे यही कीटाणुओं का कुछ बीमारियों का, कारण होने का सिद्धान्त रक्खा और यह प्रमाणित करने की घोषणा दी कि जिन कीटाणुओं को उन्होंने बीमारों के रक्त, थूक, और विष्टा आदि में पाय था वही उन बीमारों की उत्पत्ति करने के मूल कारण हैं। इस सिद्धान्त के ऊपर उस समय भी बहुत से वैज्ञानिकों से डाक्टर कौश के वाद-विवाद हुये। अन्य वैज्ञानिकों का कहना था कि कीटाणु जो बीमारों के रक्त और विष्टा में उत्पन्न हो जाते हैं वे रोग का परिणाम

है कारण नहीं । डाक्टर कौश ने इसके उपर पांच प्रमाण देकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि की और इसके फल स्वरूप लोगों ने सन् १८८० ई० में इस सिद्धान्त को मानना आरम्भ कर दिया ।

गन्दगी को नष्ट करने के आधुनिक साधन उपाय

विधि नं०— १

(क) आधुनिक साधन जो मनुष्यों को विष्ठा को और अन्य विषाक्त पदार्थों को नष्ट करने के प्रयोग में लाये जाते हैं वे बहुधा विष्ठा के गड्ढों में इसको बन्द करके गलाव सड़ाव की क्रिया ही है। यानि अनेक स्थानों पर इसको विशेष अंगीठियों द्वारा जलाया भी जाता है और कुछ स्थानों में पक्के हौजों में डाल कर सड़ा भी दिया जाता है।

(ख) टट्टी घरों में से विष्ठा की भरी बालटियां इकट्ठी कर ली जाती हैं और ऊपर से उनके मुंह बन्द करके रख दी जाती हैं।

(ग) वहां से ये विष्ठा भरी हुई बालटियाँ गाड़ियों द्वारा विष्ठा के गड्ढों में, जो शहरों से कुछ ही दूरी पर बनाये हुये होते हैं, ले जाया जाता है और वहां उनमें से विष्ठा इन गड्ढों में पलट दी जाती है और तब इन गड्ढों में मट्टी की एक तह भी डाल दी जाती है इन गड्ढों में यह विष्ठा गलाव सड़ाव की क्रिया से सड़ कर खेतों में देने वाली खाद में स्वंम परिणित हो जाती है।

विधि नं० २—

इस विधि में विष्टा को केवल दहन कर दिया जाता है।

विधि न० ३ --

इस विधि में विष्टा को फ्लशिंग कमोड़ों FLUSING COMMOODES और चीना के बड़े बडे नलों के द्वारा पानी मिला कर बहा दिया जाता है और किसी एक स्थान पर सब विष्टा को एक बडे होज में एकत्रित करके

छान लिया जाता है छने हुये जल को या तो नालियों में बहा दिया जाता है और या खेतों आदि की सिंचाई आदि में दे दिया जाता है या खाद के प्रयोग में ले लिया जाता है।

यह विधि यदि देखा जावे तो विधि नं० १ का ही एक विशेष रूप है। अन्तर केवल इतना ही है कि विधि न० १ में विष्टा बालटियों द्वारा भेजी जाती है और विधि नं० ३ में यह नलों द्वारा बहा कर ले जाई जाती है।

विधि नं० ४—

इस विधि न० ४ में विष्टा को एक पक्के हौज में पानी मिला कर डाल दिया जाता है और वहां पर उसको सड़ने दिया जाता है। यह सड़ाव गलाव का क्रिया तीव्र वेग से इन हौजों में हुआ करती है, और कीड़ों की फौज के सहयोग से सब स्थूल विष्टा नष्ट कर दी जाती है। विषाक्त गैस लम्बे २ नलों से निकाल कर वायु मण्डल में फैलाई जाती है और जल नालियों में बहा दिया जाता है।

विधि नं० ५—

इस विधि में विष्टा जल में मिला कर कच्चे गहरे गढ्ढों में डाल दी जाती है-इसका जल विधि नं० ४ के विरूद्ध पृथ्वी में शोषित हो जाता है और स्थूल विष्टा सड़ाव गलाव की क्रिया से कीड़ों को खिला कर नष्ट कर दी जाती है। यह कच्चे हौज ऊपर से बन्द करके रक्खे जाते हैं।

तीसरा प्रकरण

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के कीटाणु सिद्धान्त का निर्णय

[१] पीछे लिखा हुआ पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह कीटाणु सिद्धांत (पृष्ट ३१ से ३८ तक) कि बहुत सी फैलने वाली बीमारियों का विष विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न किया जाता है सर्वथा निमूल है। इतना अवश्य सत्य है कि भूस्थल पर जहाँ २ और जब २ जल, वायु और पृथ्वी पर विषों की उत्पत्ति शीघ्रता से होती है और जहाँ साधारण वायु वृष्टि, ताप क्रम आदि उन विषों का शोधन नहीं कर सकते वहाँ प्राकृतिक नियमानुकूल विभिन्न प्रकार के विचित्र आकृति और स्वभाव वाले कीटाणु उस विष में स्वयं उत्पन्न होजाते हैं और उन कीटाणुओं का काम उस विष का विनाश करना होता है नकि उस विष की उत्पत्ति करना।

भूस्थल पर विषोत्पत्ति केवल मनुष्य और उसके पालतू जानवर करते हैं और विष विनाश विभिन्न प्रकार के कीटाणु करते हैं।

विष जैसा पीछे पृष्ट १ से ३० तक में कई बार बताया जा चुका है कि मनुष्यों की दिनचर्या के विभिन्न कार्यों में जहाँ २ पार्थिव (बनस्पतिक और मांसिक) पदार्थों का जल-वायु और अग्नी से एक साथ संसर्ग हो जाता है वहाँ २ विष की उत्पत्ति होनी प्रारंभ होजाती है और लगातार होती रहती है और यही विष बढ़ कर असीम महत्व धारण कर लेता है और यदि इसकी उत्पत्ति के साथ २ उसका

विनाश नहीं किया जाता तो फिर यह विष मनुष्यों के स्वास्थ्य और कभी कभी जीवन को भी हानि पहुंचा देता है।

[२] पाश्चात्य वैज्ञानिकों के सिद्धान्तानुकूल यह जल वायु और पृथ्वीको दूषित करने वाले विष कीटाणुओं के शरीरों से उत्पन्न होते हैं और यह कीटाणु इन विषों का कारण हैं। लेखक के मत से यह जल वायु और पृथ्वी को दूषित करने वाले विष अन्य प्रकार यानी उपरि लिखित कारणों से उत्पन्न होते हैं और कीटाणु इन विषों को नष्ट करने के हेतु उत्पन्न होते हैं।

हम भी विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं का अस्तित्व विषाक्त पदार्थों और बीमार मनुष्यों के शरीरों में उसी प्रकार से मानते हैं जिस प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक हम भी उन में से कितने ही कीटाणुओं के शरीरों के किसी २ हिस्सों में विशेष प्रकार का विष मानते हैं परन्तु फिर भी हम यह मानने के लिये तैय्यार नहीं कि यह कीटाणु मनुष्य स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने के लिये विषोत्पत्ति करते हैं। ऐसा होते हुए भी यह कीटाणु मनुष्य स्वास्थ्य के विपरीत कोई काम नहीं करते बल्कि जितने कार्य करते हैं वे विष विनाश करने के हेतु करते हैं। इसके लिये हम विस्तारपूर्वक वर्णन आगे करेंगे।

कीटाणुओं की क्रियायें और उनकी सत्यता

[३] प्राकृतिक नियामानुकूल भूस्थल पर कीटाणुओं की सहायता प्रकृति उसी समय करती है जब मनुष्य और उसके पालतू जिनावरों कृत विषाक्त पदार्थों का परिमाण एक विशेष मात्रा से ऊंचा चला जाता है और जबकि साधारण धूप वायु और वृष्टि की क्रिया से वह विष एक नियत समय में

छिन्न भिन्न नहीं होता दिखाई देता।

(अ) भिन्न २ प्रकार और आकृति वाले अनेक भाँति की शक्ल सूरत और स्वभाव वाले कीटाणु भूस्थल पर तीनों प्रकार के स्थानों में यानी जल पृथ्वी और वायु में तत्काल उत्पन्न कर दिये जाते हैं या बाहर से भेज दिये जाते हैं यह एक विचारणीय प्राकृतिक आश्चर्य है और यह नीयम वैज्ञानिकों की कोटी से बाहर है। एक प्रकार के विष में एक ही आकृति या बनावट के एक ही सूरत आकृति वाले कीटाणु होते हैं दूसरी आकृति के नहीं होते। हम अपनी दूसरी पुस्तक में जो आगे लिखेगें बहुत कुछ इस बारे में बताने का प्रयत्न करेगें कि कीटाणुओं की शक्ल सूरत बनावट आदि उनके कार्यों के ऊपर निर्भर होती हैं।

(इ) यह विशेष प्रकार के कीटाणू एक बार एक स्थान में उत्पन्न हो कर वहाँ से कदापि नही हटते जब तक कि वहां के विष विनाश कार्य पूर्णतः समाप्त नही कर लेते चाहे वह कितनी ही देर में हो प्रथम तो इतनी बड़ी तादाद में कीटाणु उत्पन्न किये जाते हैं जिस से विष विनाश कार्य शीघ्र समाप्त हो फिर भी इसका हिसाब प्रकृति स्वयं ही रखती है मनुष्य का हस्तक्षेप नही। केवल एक ऐसी दशा है जिस में यह कीटाणु उस विष के स्थान को अपने नियत समय से पहिले छोड़ देते हैं और वह दशा जब होती है जब कि बीच में ही किन्ही भी मनुष्यकृत या मनुष्य रचित प्रयोगों या औषधियों से वह विष पूर्णतः नष्ट कर दिये जाते हैं। विष के साफ हो जाने पर वह कीटाणु रोकने से भी नही रुकते।

(उ) विष क्षेत्र से हट कर यह कीटाणु विष विनाश होने पर उस स्थान से याती जीवित दूसरे स्थान पर चले जाते हैं या वहीं

मर जाते हैं।

(क) यह कीटाणु किसी न किसी रूप में उसी विष को अपनी ख़ुराक बना कर खा डालते हैं और या अपने शरीर से कोई ऐसा विशेष प्रकार का रस निकालते हैं जिसके विष में मिलने पर वह विष शोधित हो जाता है।

(ख) पहिले विष की उत्पत्ति होती है फिर कीटाणु उत्पन्न होते हैं या बाहर से आते हैं।

(ग) मनुष्य के रहने के स्थानों में कीटाणुओं मक्खियों मच्छरों आदि का बढ़ी हुई तादाद में पायाजाना यह संबोधित करता है कि उस स्थान के वाता वर्ण (वायु,जल) में विष की मात्रा नियतमात्रा से अधिक बढ़गई है।

[४] पाश्चात्य वैज्ञानिकों के निदान और चिकित्सा दोनों ही कीटाणुओं की क्रियायें और उनकी सत्यता पर (जैसा पिछले पैरे नं ३ में वर्णन किया गया है) अधिकांश निर्भर है और चूंकि इन प्रयोगों का आधार कीटाणुओं की क्रिया की प्राकृतिक सत्यता पर है इस कारण इन प्रयोगों में १०० प्रतिशत सफलता होती है और इन प्रयोगों से ये पाश्चात्य वैज्ञानिक बिना नाड़ी परीक्षा आदि के भी निदान केवल कीटाणुओं की शक्ल और सूरत मिलाने से ही कर लेते हैं और सही कर लेते हैं यह प्रयोग पश्चात्य वैज्ञानिकों का बहुत सराहनीय है और दुनिया के मानने योग्य है इन से यह न समझना चाहिए कि भारतीय निदान विधियें या चिकित्सा विधियें इन पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रचलित की गई विधियों से कम सराहनीय है। भारतीय शरीर वैज्ञानिक केवल नाड़ी परीक्षा आदिसे ही जैसा पीछे वर्णन किया जा चुका है एक मिनट भर में ही मनुष्य के बीमार शरीर का यह पता लगा लेते थे कि शरीर में जल

वायु अग्नि (कफ, वात, पित्त) में से कौन सा पदार्थ बढ़ा हुआ है या एक से ज्यादा कौन से पदार्थ इन तीन में से बढ़े हुए हैं फिर वे भारतीय वैज्ञानिक उन बढ़े हुए पदार्थों को कम करने की औषधि तुरन्त देकर उनको नियत मात्रा में कर देते थे और इससे अधिक कीटाणुओं आदि के चक्कर में न पड़ते थे ।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के निदान और चिकित्सा के सिद्धांत

(i) निदान--प्रथम तजुरबे कर २ के इन पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने हर प्रकार के बीमार मनुष्यों के शरीरों से थोड़ा सा रक्त या रस निकाल कर खुर्दबीन के शीशों से बड़ी सावधनी से निरीक्षण कर करके नोट करलिया कि कौन २ से विष में कौन २ प्रकार और किस २ आकृति के कीटाणु मौजूद होते हैं। (इस बात से थोड़ी देर के लिये कोई सम्बन्ध नहीं कि वे कीटाणु विष में क्या क्रिया कर रहे थे) उन्हों ने अपना इन खोजों के नताजों को बडी सावधाना से लिख लिया कि मलेरिया ज्वर के बीमार के रक्त या रस में बम्बई पुलिस की वर्दीदार सिपाही थे प्लेग के बीमार के रक्त या रस में पंजाब पुलिस की वर्दी वाले सिपाही थे और हैजे के बीमार के रक्त या रस में बंगाल पुलिस की वर्दी के सिपाही थे। उसके उपरांत जब भी कोई बीमार निदानार्थ आया निदान परीक्षार्थ उसके शरीर में से एक विंदु रक्त या रस को लेकर उसको खुर्दबीन से इस बार फिर देखा कि उस में कौनसी शक्ल सूरत के कीटाणु मौजूद दिखाई पड़ते हैं। उन को देखकर तुरन्त यह बता दिया कि बीमार के रक्त में किस प्रकार का विष मौजूद है या यह कि बीमार का क्या रोग है।

इस परीक्षा का आधार पीछे बताई हुई कीटाणुओं की क्रियाओंकी सत्यता पर है।

(ii) चिकित्सा—इसी प्रकार से दूसरे प्रयोग द्वारा एक विशेष विष के कीटाणुओं पर कई प्रकार की औषधियें बारी बारी से डाल कर देखा जाता है कि यह कीटाणु किन किन औषधियों से पोषण होते हैं और बढ़ जाते हैं और किन औषधियों के लगाने से निर्बल हो जाते हैं या मर जाते हैं। जिन औषधियों से निर्बल हो जाते या मर जाते हैं वही उस मर्ज़ की औषधि मान ली जाती है और ठीक भी है। इसका आधार भी कीटाणुओं की क्रियाओं की सत्यता पर है।

इन निदान और चिकित्सा की विधियों का केवल दिग दर्शन करा देना ही लेखक का ध्येय था इस से अधिक नहीं।

जहाँ तक निदान और चिकित्सा का सम्बन्ध है उस में कीटाणुओं को विषों का कारण या कार्य होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता चाहे वे कारण हों, चाहे कार्य, इस लिये यह दोनों विधियाँ पाश्चात्य वैज्ञानिकों की इस भेद के कारण न दोषी हुई और न ही कर्म करने से बाधित हुई। परन्तु जहां तक स्वस्थता (पृथ्वी, जल, वायु की शुद्धी) सम्बन्ध है वहां पर पूर्ण प्रकार से विष का विनाश न किया जा सकेगा जब तक इस बात का भली भांति पूर्णतः निर्णय न हो जाय कि क्या यह किटाणु पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मतानुसार विषोत्पत्ति के कारण हैं या लेखक के मतानुसार विषोत्पत्ति के कार्य हैं। यदि किसी छोटी सी कोठरी की अशुद्ध या विषाक्त वायु को शु करना ही केवल ध्येय होता तो संभव था कि ऊपर बताई हुई मनुष्य शरीर वाली निदान और चिकित्सा की विधियें इस पर

लागू करली जाती। परन्तु ऐसा नहीं है। जंगलों को छोड़ते हुए बसे हुए मनुष्यों के रहने वाले स्थानों की भी लंबाई चौड़ाई और ऊंचाई बहुत ज्यादा होती है जहां को अशुद्ध वायु या अशुद्ध जल या पृथ्वी स्वच्छ और शुद्ध करनी होती है। इन सब कारणों से यह बात स्पष्ट है कि सावधानी से और दलीलें पेश की जावें। जिनसे भारतीय जनता को इस बात का यथार्थ ज्ञान हो जावे कि क्या यह पाश्चात्य वैज्ञानिकों की सौ वर्षीय खोज किसी अंश में ठीक भी है या बिल्कुल असत्य है। लेखक के मत से यह बिल्कुल असत्य है।

[५] भूस्थल पर प्रकृति के नियमानुकूल छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कीटाणु, मक्खी, मच्छर और यहां तक कि बड़े से बड़े जानवर भी मनुष्यों के प्रति एक ही सा व्यवहार रखते हैं और वह व्यवहार है सेवा और मित्रता। यदि कुछ वैज्ञानिक इन को शत्रु भाव से देखते हैं तो यह भूल है चूंकि मैं इस मजमून पर भविष्य में दूसरी पुस्तक लिखूंगा इस पुस्तक में अधिक इसके बारे में मैं कुछ नहीं लिखूंगा-कहना अब यह था कि मक्खी मच्छर और बड़े कीड़े मकोड़े भी प्रकृति के उसी प्रतिबन्ध में बन्धे हुऐ हैं जिस में प्लेग, हैजे या दूसरी बीमारियों के कीटाणु कीड़ों पर रहते होंगे उदाहरण के रूप में आइये मक्खियों पर कुछ तजुरबे कर डालें आशा है कि जो नतीजा मक्खियों के तर्जुबे से निकलेगा या निकलता हुआ प्रतीत होगा उसे आप कम से कम सब छोटे २ कीटाणुओं के उपर लागू मानलेंगे। मानने की न लेखक को कोई ज़िद है और न ही आपका न मानने की ही कोई खास ज़िद प्रतीत होती है केवल सत्यता की खोज लेखक को वैसी ही है जैसी आप को। अच्छा ही होगा यदि और कुछ हाल मालूम होजावें।

(i) मक्खियों का घरों में कोई भी सभ्य पुरुष बढ़ना पसंद नहीं करेगा। सब यही चाहते हैं कि यह कम होजाये बिलकुल न हों और यदि हों तो इतनी कम हों कि दिखाई न दें। क्योंकि इनका दृष्य ही एक अस्वच्छता का संकेतन है। अब रही यह बात क्या यह संभव है कि मक्खियाँ घरों में घटकर इतनी कम हो जावें जितनी से हम विचलित न हों विशेषतः हमारे अपने शहर सहारनपुर के समान तरी वाले शहरों में कदापि नहीं, ऐसा होना सर्वथा असम्भव है क्योंकि वातावरण की सफाई का भारभी प्रकृति ने अपने ऊपर स्वयं लेरखा है और प्रकृति किसी की राय या सलाह को सुनने या मानने के लिये तैयार नहीं है और न यह अपने नियमों के पालन में किसी भारतीय वैज्ञानिक की सुनती है और न ही पाश्चात्य वैज्ञानिक की। वही करने का आदेश अपने कीटाणु दल या मक्खियों और मच्छरों को देती है जो प्राकृतिक नियमों पर निर्धारित हैं और जैसा देश और काल होता है, उसी के अनुकूल कार्य किया जाता है। यदि पृथ्वी स्थल पर और वायु मंडल या नज़दीक के भरे हुये जल के कुडों में काफी परिमाण में विष की मात्रा मौजूद है तो मक्खियों की तादाद हरगिज कम न रखी जावेगी केवल उतनी ही रहेगी जितनी की आवश्यकता है। यदि लेखक चाहे जब कम न होंगी और पाश्चात्य वैज्ञानिक चाहे जब कम न होंगे। यदि डी० डी० टी० की वर्षा करना आरम्भ करदें तब भी कम न होगी (कुछ थोड़े समय के लिये कम हो जायेगी जब तक उसी रसायणिक औषधि का वायु मंडल या पृथ्वी पर असर रहेगा फिर असर के कम होते ही उतनी ही हो जायेगी। इसमें एक बात नोट करने वाली यह है कि डी० डी० टी० या चाहे जौनसी औषधि प्रयोग में लाई जावे। यदि इससे मक्खियां थोड़े समय के लिये भी हटानी हों तो

औषधि ऐसी होनी आवश्यक है। जिससे उस विष की सफाई भी साथ २ ही हो जाये जिसको साफ करने के लिये मक्खियां उस स्थान पर इकट्ठी हुई हैं। क्योंकि उनका असल ध्येय विष है जिसके लिये मक्खियाँ इकट्ठी हुई हैं। ये वालन्टियर फौजी सिपाही हैं। जो इतने कटिबद्ध सिपाही हैं कि मरने की परवाह नहीं करते ड्यूटी पर कार्य क्षेत्र में मरना या इनको कार्य पूरा करना है यदि एक चौथा व्यक्ति जाली दार डंडे से मारना आरम्भ करदे तो भी कम न होगी। सारांश यह है कि कम जभी होंगी जब कार्य की पूर्ति हो जावेगी। वह विष विनाश होतेही स्वयं चली जावेगी और कहीं दृष्टि से बाहर जाकर अनजान जगह छिप जावेंगी।

(ii) अब दूसरा उदाहरण भी लीजिये एक बेचारी बीमार और लाचार गरीब स्त्री के बालक जिसको वह स्त्री कई कारणों वश कई दिनों से स्वच्छ नहीं कर सकी और उसके नाक के नीचे ऊपर ओष्ठ पर कुछ मैल नाक द्वारा बह कर सूख सा गया हो (थोड़े समय के उपरांत लेखक के मतानुसार उस मल में वायु मंडल की जल वायु और अग्नि (उष्णता) के संसर्ग से गलाव और सड़ाव की क्रिया का प्रारंभ हो जाना है।

अब उस बच्चे की नाक के ऊपर मक्खियाँ आनी शुरू हो जाती हैं और (चूंकि प्रकृति का नियम शीघ्रता से स्वच्छता उत्पन्न करना है) बढ़ती चली जाती हैं, जहां तक कि उस सड़ने वाली वस्तु पर बैठकर उसकी सफाई करने की गुंजायश रहती है। इस बीच में इन मक्खियों को उस बच्चे की माँ उड़ाती है फिर भी वह नहीं हटती और हट २ कर फिर बैठ जाती हैं जब मल की ओष्ठ से पुर्णतः सफाई हो जायेगी

तो फिर सब मक्खियाँ वहाँ से चली जावेंगी और यदि कोई बुलाए भी तो एक भी नहीं आवेगी दूसरी बात इस उदाहरण में यह समझने से सम्बन्ध रखती है वह यह है कि कितने हलके वजन की मक्खी होती है और इतने हलके वजन की होते हुऐ भी इसके पैरों में एक लोहे की पिन से भी अधिक ताकत होती है सूखे मल को त्वचा से खोद कर खा लेती है। एक और बात भी यहां पर बतला देना चाहते हैं वह यह है कि यह मक्खियाँ काफी बदबूदार मल या विष्टा को भी खा कर फिर उन में या उनकी विष्टा में कोई विशेष असाधारण बदबू नहीं आती यदि आप तजुरबा करना चाहते हों तो एक साफ स्वच्छ कंच की शीशी में इन मक्खियों को भर के सूंघ सकते हैं या कोई और प्रकार का तजुरबा कर के देख सकते हैं कि कितनी गिलाजत उसके शरीर पर लिपटी है। जो वैज्ञानिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों के कुछ करे हुए तजुरबों के नतीजों को प्रमाण में पेश कर के यह समझ रहे हों कि जनता अब भी पहिले की प्रकार उनकी उल्टी सीधी कहानियों में उलझ जायगी मैं उन को सलाह देना चाहता हूँ कि वे अपना समय थोड़ा सा प्रकृति की इस विचित्र कारीगिरी की निम्नलिखित मात्राओं के सोचने में अवश्य लगावें और लेखक की दूसरी पुस्तक की इन्तजार करें।

(अ) मक्खी के उपर की खाल कितने अंश में पानी को न शोषन करने वाली होती है।

(इ) कितने अंशमें मल को मक्खी अपने परों और पैरों द्वारा चिपका कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हैं।

(उ) मक्खी के विष्टी में किस प्रकार की बदबू होती है और

(क) यह विष्टा किस प्रकार का विष वायु मंडल में फैला ने की सम्भावना रखती है।

इन प्रश्नों के यतार्थ उत्तर आने पर लेखक अन्य कीड़ों और जानवरों के बारे में कुछ प्रश्न करेगा जैसे मछली और सूअर के विष्टा आदि के बारे में।

(iii) अब हम मक्खी का तीसरा उदाहरण देते हैं वह यह कि एक मनुष्य जो आस्तीन दार कमीज़ पहिने हुऐ है उसकी बांह में एक छोटी सी फुन्सी होकर पक जाती है और उस में मवाद पड़ना आरंभ हो जाता है तब एक मक्खी उस मनुष्य की बाँह के ऊपर चलते फिरते फुन्सी पर बैठने का प्रयत्न करती है और वह मनुष्य उसको बारम्बार उड़ाता है, मक्खी अकेली ही है परन्तु बैठने की हर बार कोशिश करती है। दो घंटे बराबर मनुष्य और एक मक्खी की लड़ाई में इसी तरह बीत जाते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि आखिर जीत किस की होगी? क्या हम कह सकते हैं कि मक्खी की?

अब आप इन मक्खी के तीनों उदाहरणों में से किसी एक में भी यह कह सकते हैं कि पहिले से विष (मल) मौजूद था या मक्खी—लेखक की दृष्टि में तीनों में पहिला कारण यानी विष मौजूद था और मक्खी जो कार्य है उस विष के अस्तित्व में आने के बाद गई या लेजाई गई—

मक्खी की भांति हर कीटाणु के क्रिया क्षेत्र में भी यह प्रतीत होने से नहीं रहता कि पहिले विष या मल का अस्तित्व होता है और उसके उपरान्त आवश्यकता पड़ने पर विष बिनाश करने वाले को "कारणाभावे-कार्या भावः"

कारण के अभाव करने से कार्य का अभाव स्वयं हो जाता है। इन तीन उदाहरणों को समझ लेने के बाद आप स्वयं इस बात का निर्णय करें कि स्वास्थता और स्वच्छता के हेतु किसी विषाक्त स्थान से विष निर्वानार्थ क्या आप सब से प्रथम उस विष की सफाई करेंगे या सब से पहिले पाश्चात्य वैज्ञानिकों की सुझाई हुई विधि के अनुकूल मक्खियों को डी-डी-टी या अन्य छिड़कने की औषधियों द्वारा या केवल जाली बंधे हुए डंडे से मार २ कर वहां से हटा देना पसंद करेंगे और ऐसा करने से क्या आप सन्तुष्ट हैं कि विष उस स्थान से मक्खियों के मरने के साथ २ ही हट जाता है।

हम भी यह नहीं कहते कि मक्खियों या मच्छरों को पाला जावे या जरूरत पर न माराजावे परन्तु हम इस अन्धाधुन्द बिना सोचे विचारे एक तरफा मार करने वाले स्वास्थ्य हितैषी सज्जनों को खबदार कर देते हैं कि ऐसा करना व्यर्थ है हमें कार्य वह करना चाहिये जिससे कुछ तातपर्य निकले। आधुनिक काल में पाश्चात्य देशों की बातों को हमारे अभागे देश में अनुचित महत्व देने का कुछ अभ्यास सा पड़ गया है।

(६) अब इस पुस्तक को विस्तारवृद्धि से रोकने के कारण मक्खी को छोड़ कर अन्य कीटाणुओं या बड़े कीड़े मकौड़ों या उससे भी बड़े जानवरों की विचित्र लीलाओं का उल्लेख जो वे सेवा और मित्र भाव से और सब से अधिक प्रकृत्ति की नियम वद्धता से मनुष्य के प्रति करते हैं इस पुस्तक में नहीं करेंगे-समय मिलने पर दूसरी पुस्तक में लिखेंगे उसी पुस्तक में यदि आवश्यक समझा गया तो डा० कौश की सन् १८७६ में दी हुई पांच दलीलों के भी जवाब देंगे।

यहाँ पर अन्त में जनता के सूचनार्थ संक्षेप में थोड़ा सा विवरण लेखक की कीड़ों और जानवरों के सम्बन्ध में इन पांच बातों का किया जाता है जिन को लीडिन के डाक्टर हैगन-होज ने अपनी उदार विज्ञान से २५ सितम्बर १९५० में ज्यों को त्यों माना है और लिखा है।

डा० हैगन होज नीदरलैंड के एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति हैं जो World Leaugue for the protection of ainmals के प्रधान हैं यह लीग पिछले ही साल से स्थापित हुई है और ७१ देशों के विद्वान इस में सम्मिलित हैं डाक्टर महोदय लिखते हैं कि—

(७) "बड़े हर्ष के साथ मेरी काँग्रेस की कौन्सिल के मैम्बरों ने आपकी खोजों को जो आपने जानवरों और कीटाणुओं के बारे में की हैं मान लिया है—हमारा भी दृढ़ विश्वाश है भूस्थल पर हर जानवर (कीड़े मकोड़े इत्यादि) एक न एक अत्यन्तावश्यक प्रकृति का कार्य करता है और वह काम उस के लिये नियुक्त किया हुआ कार्य होता है यद्यपि हम अपनी खोज से बहुतसों के बारे में जान सकते हैं परन्तु फिर भी ऐसे बहुत हैं जिन के बारे में कुछ नहीं जाना जा सकता है"

यह वक्तव्य डा० हैगनहोज महोदय ने लेखक के ३० अगस्त १९५० के पत्र के जवाब में भेजा है इस पत्र में लेखक ने अपनी पांच खोजों का वर्णन किया है। हम विस्तार वृद्धी को रोकने के कारण अपने पत्र में लिखी हुई खोजों का केवल सूक्ष्म रूपसे थोड़ासा ब्यौरा देकर लेखको समाप्त कर देते हैं पूरे पत्र की नकल हम अपनी दूसरी पुस्तक में देंगे लेखक के ३० अगस्त १९५० के पत्र की कुछ बातें यह हैं :—

सब कीड़े मकोड़े मक्खी मच्छर और कीटाणु आदि भूस्थल पर मनुष्यों की सेवा हितार्थ प्रकृति के नियमबद्ध होकर विभिन्न और विचित्र क्रियायें करते हैं।

इन से प्रकृति भिन्न २ प्रकार के काम लेती है मनुष्यों ने अपनी अनभिज्ञता के कारण उनमें से बहुत सों को जो स्वास्थ्य रक्षा और विष—विनाश का कार्य करते हैं। उनको मनुष्यों के शत्रु के नाम से सम्बोधित कर डाला है। मनुष्यों का न्याय मनुष्यों के लिये ही परिक्षित बना लिया है। इन कीड़े मकोड़े और कीटाणुओं के लिये बना हुआ मालूम नहीं होता।

मक्खियें मनुष्य के रहने के मकानों की सफाई करने वाला सब से ज्यादा काम करने वाला सैनीटरी महकमे का सिपाही है जिसको प्रकृति तुरन्त ही रहने वाले घरों के जलवायु और पृथ्वी के विषाक्त हो जाने पर डीवटी पर लगा देती है और विष विनाश करती है।

संयमी मनुष्य अपने घरों की सफाई स्वयं करते हैं और इन प्रकृति के सिपाहियों से ज्यादा काम नहीं लिया करते परन्तु आलसी मनुष्यों के घरों की सफाई यह प्रकृति के सिपाही ही करते हैं।

चौथा प्रकरण

सारांश—

इस पुस्तक के पहिले दो प्रकरणों में भारतीय और पाश्चात्य स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की तुलना की गई है। तीसरे प्रकरण में पाश्चात्य वैज्ञानिकों के माने हुए कीटाणुओं द्वारा

विषोत्पत्ति सिद्धान्त की आलोचना की गई है और प्रकृति के नियामानुकूल जलवायु अग्नि (उष्णता) के सहयोग से साधारण मात्रा में विष विनाश और कीटाणुओं के सहयोग से विशेष मात्रा में विष विनाश किया जाने को सिद्धी की गई है।

अब इस चौथे प्रकरण में केवल प्रथम प्रकरण (पृष्ठ १ से ३० तक) में लिखी हुई खोजों का सारांश देते हैं जिससे वे बताई हुई बातें सूक्ष्म रूप में पुस्तक पढ़ने वालों को याद रहें और स्वास्थ्य रक्षक विधियाँ सरलता से प्रयोग में लाई जा सकें।

(i) भूस्थल पर मनुष्यों के रहने वाली बस्तियों, शहरों, और ग्रामों में बीमारियां फैलाने वाला विष कहीं बाहर से नहीं आता और न किसी कीटाणू द्वारा कहीं से लाया जाता है यह विष उसी स्थान पर रहने वाले मनुष्यों और उनके पालतू जानवरों के रहने सहने की क्रियाओं से उत्पन्न होता रहता है। और प्रकृति के नियमानुकूल सब देशों में और सब स्थानों पर यह विष उत्पन्न होना अनिवार्य है। बिना विषोत्पत्ति पदार्थों में परिवर्तन नहीं होता और पदार्थों के परिवर्तन बिना दुनिया में न कोई कार्य हो सकता है और न कोई प्राणी ही जीवित रह सकता है।

इसलिये पदार्थ परिवर्तन का होना सृष्टि नियम का एक परमावश्यक अंग है इसके होने से विषोत्पत्ति होना अनिवार्य है।

यह परिवर्तन जल, वायु और पृथ्वी तीनों प्रकार के पदार्थों को थोड़ी बहुत मात्रा में मनुष्यों के रहने वाले स्थानों में हुआ ही करता है और लगातार होता रहता है इस परिवर्तन से

उत्पन्न हुए अल्प मात्रा के विष को बुद्धिमान पुरुष रहन सहन के साथ साथ ही नष्ट करते रहते हैं इकट्ठा नहीं होने देते। क्यों कि इसके इकट्ठा होने से स्वास्थ्य नाशक विष बन जाते हैं।

प्राचीन भारतवासी इस विष के नष्ट करने का बड़ा ध्यान रखते थे यही कारण था कि वे हर घर में वायु की शुद्धि दिन में दो बार एक प्रातःकाल और दूसरे सांय काल छोटी छोटी अगींठियों में अग्नि प्रज्वलित करके उसको घरों के अन्दर आधा घंटे के लगभग रखकर और प्रायः कुछ रोग नाशक और कुछ वायु शोधक औषधियाँ उस अग्नि में जला कर उस के धूम्र से वायु की शुद्धि किया करते थे। इस रोजाना की छोटी मात्रा के प्रयोग के अतिरिक्त हर शहर कस्बे या ग्राम में भारत वासी बहुत से प्राचीन समय से शीत ऋतु निकल जाने पर फाल्गुन या चैत्र मास में एक विशेष तिथि और विशेष समय पर बहुत बड़े अग्नि के ढेरों को प्रज्वलित करके होली का त्योहार मनाते चले आरहे हैं। यह सब स्वास्थ्य रक्षक प्रयोग थे जिन से जल, वायु की शुद्धि जीवन क्रिया के साथ साथ होती रहती थी। प्राचीन भारत वासी वायु की शुद्धि पर सब से अधिक ध्यान देते थे और बसी हुई बस्तियों के ऊपर की वायु मंडल को उपरिलिखित अग्नि के प्रयोग से खूब स्वच्छ रखते थे जब इस वायु मंडल को इतना स्वच्छ करके रक्खा जाता था तो सज्जन स्वयं विचार सकेंगे कि उन के रहने वाले मकानों या स्थानों में प्रकृति की सफाई के फौजी सिपाहियों को उसमें कार्य करने की क्या ही आवश्यकता पड़ती होगी। इन सिपाहियों की आवश्यकता तो आलसी मनुष्यों के यहां पड़ा करती है जैसा आजकल प्रायः बहुत स्थानों में देखने में आता है।

स्वास्थ्य रक्षा और जलवायु स्वच्छता पर कुछ साधारण आवश्यक बातें

(अ) पृथ्वी जलवायु जहाँ मनुष्य और उनके पालतू जानवर रहते हैं थोड़ी मात्रा में केवल रहन सहन से विषाक्त होजाया करती है या तो इनमें किन्हीं प्रयोग द्वारा विषोत्पत्ति को कम कर देना चाहिये और यदि यह संभव न हो सके तो फिर विभिन्न प्रयोगों द्वारा इनके रहने वाले स्थानों की पृथ्वी, जल, वायु की विषाक्त वायु की शुद्धि थोड़ी मात्रा मे रोज करनी चाहिये। सब से सरल प्रयोग अग्नि की अंगीठी का है। बिजली के पंखे को उलटा कर के भी घरों की दूषित वायु को बाहर निकाला जा सकता है परन्तु सब से अच्छा अग्नि की अंगीठी का प्रयोग है।

(३) विषों के बढ़ने पर पार्थिव और जलीय पदार्थों से बढ़ा हुआ विष एक देशी होने के कारण शीघ्र ही साफ किया जा सकता है। अग्नि से पकाना या उबालना आदि प्रयोग अति उपयोगी हैं। वायु से विष को साफ करने के लिये ग्रामों में चौराहों पर या घरों के आंगन के मध्यान्ह में बड़े २ होली की तरह के लकड़ियों या उपलों के ढ़ेर लगाकर होली की तरह जलाने से और कई घंटे इनको जलते रहने देने से वायु मंडल स्वच्छ हो जाता है जब यह विशेष होलियें जलाई जायें तो घरों में दरवाजे खिड़कियें सन्दूक आदि के ढकने सब खोल कर रखने चाहियें जिससे मकान के बन्द स्थानों से दूषित वायु खिच कर होली की ज्वाला में चली जावें। होली जितनी बड़ी होगी उतना ही शीघ्र कार्य करेगी। यह होलियें बीमारी फैले हुये स्थानों में

जादू का कार्य कर के दिखावेंगी—लेखक ने काफी तजुर्बे किये हैं ।

(ख) जैसे पीछे बताया गया है हर खाद्य पदार्थ तीन अवस्थाओं से गुजरता है यानी अवस्था नं० १ अनाज के दाने के उसके पेड़ से टूटने के समय से उसके खाने के लिए मुंह में जाने तक। अवस्था नं० २ उस दाने के शरीर के अन्दर के सफर को यानी जब से वह दाना मुह में खाया जाता है और जब तक उस दाने का एक हिसा मनुष्य शरीर से विष्ठा के रूप में परिणत होकर बाहर नहीं निकल जाता। अवस्था नं० ३ विष्ठा की उत्पत्ति से प्रारंभ होती है और उस समय तक रहती है जब तक उस विष्ठा को विष्ठागृह में बन्द करके सड़ा गला न दिया जाय (चौथी अवस्था वह होती है जो इस सड़ी गली विष्ठा के प्रमाणुओं को फिर दूसरी बार अनाज के पौधों में परिणित कर के अनाज के दाने उत्पन्न करदें इस अवस्था का वर्णन हमने पुस्तक में नहीं किया)

अवस्था नं० १–में खाने की वस्तुओं और अनाजों को सुरक्षित रखने के लिये चार तरीके हैं जोनसा सरलता और थोड़े खर्च से प्रयोग में लाया जा सके अवश्य करना चाहिये। खाद्य पदार्थ से जल, वायु, अग्नि (४०° से १५ ° फ० ह०) के इकट्ठे संसर्ग से तीनों में से एक तत्व को हटा देना चाहिये। जैसे—

(i) जल को हटाने से (या सुखाने) डैसीकेशन।
(ii) वायु को हटाने से (शून्य) वैकूम ।
(iii) अग्नि को हटाने से (वर्फ) फ्रीजीडाइजिंग।
(iv) रसायणिक प्रयोग से (मसाले लगाकर) कैमीकल यदि पूरे तौर से इन चारों प्रयोगों में से कोई भी न होसके तो भी

अधूरे प्रयोग भी खाद्य पदार्थों की थोड़ी मात्रा में रक्षा अवश्य करेंगे और उस खाद्य पदार्थ में फलतः विष की उत्पत्ति न्यून मात्रा में ही होगी और जल, वायु सुरक्षित रहेगी।

अवस्था नं० २—में खाने के बाद अच्छा हो हाजमा जल, वायु, अग्नि (५० ° से १५० ° फ०ह०) के इकट्ठे संसर्ग से ही होता है यानी मनुष्य तापक्रम ९८'४ ° फ० ह० पर ऊंचा स्वास्थ्य रहता है। वैद्यों की सम्मति से अपनी पाचन शक्ति को अच्छा रखने से मनुष्यों का शरीर बहुत साधारण मात्रा में विषोत्पत्ति करेगा और घरों के वातावरण को केवल थोड़ा ही विषाक्त करेगा। ऐसा न होने से एक एक मनुष्य शरीर और घरों को बन्द वायु में विशेष कर रात्रि को सोते समय वायु मंडल में एक बहुत दीर्घ गंदगी के ढ़ेर से भी अधिक मात्रा में विष फेंकता रहेगा।

अवस्था नं० ३—में विष्टा मूत्र और शरीर के अन्य भागों के मल को शरीर से निकलते ही जल, वायु, अग्नि (५० ° से १५० ° फ० ह०) के इकट्ठे संसर्ग में से किसी भी एक तत्व को हटा लेना चाहिए जिससे प्राकृतिक परिवर्तन और सड़ाव गलाव की क्रिया थोड़ी देर तक (गुसलखाने से विष्टागृह में दफ़न करने तक) रुक जावे विष्टा से जल और अग्निका तो संसर्ग हटाना बहुत कठिन और खर्चीला है परन्तु वायु का संसर्ग सैनिटरी-पाइपों के उपचार से स्वयं हट जाता है। जहां सैनिटरी पाइप न लगे हों वहां विष्टा को किसी बन्द बक्स या बर्तन में बन्द करके रखना चाहिये जिसमें वायुमंडल की वायु कम से कम दूषित हो।

जलाना और गलाना दो प्रकार से विषाक्त का छिन्न भिन्न करना

(क) प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के दृष्टी कोण से मल और मृतक शरीर दोनों को छिन्न भिन्न करने का सर्वोत्तम साधन अग्नि से दहन कर देना ही है क्योंकि इससे शीघ्र ही परिवर्तन हो जाता है और चारों तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एक दूसरे से भिन्न २ हो कर भूस्थल में अपने २ समुद्रों में लुप्त हो जाते हैं और दूसरा साधन गलाने का है जिस मे परिवर्तन गलाव और सड़ाव की क्रिया से बहुत शनैः २ होता है। इस प्रकार के साधन में विषोत्पत्ति की मात्रा बहुत अधिक होती है। साधारणतः जमीन में गढ़े खोद कर विष्टा गृह बना कर उन में विष्टा और अन्य मलों को दबा दिया जाता है। प्राकृतिक नियमानुसार विष्टा गृह में पहुंच ने के बाद इसको जल, वायु और अग्नि (५० ° से १५० ° फ० ह०)का इकट्ठा संसर्ग ही जल्दी से जल्दी जला सड़ा देगा परन्तु इस प्रयोग से बदबू काफी उड़ेगी और वायु मंडल विषाक्त होगा इस कारण इस प्रयोग में थोड़ा सा परिवर्तन कर के काम में लाया जाता है यानी गढ़ों को हल्की मिट्टी की तह से ढांप दिया जाता है इससे बदबू का उड़ना बहुत कम हो जाता है और वायु पहिले ही काफी प्रवेश कर जाती है। इन विष्टा गृहों में चूंकि विष्टा एक बड़ी मिकदार में इकट्ठी होती है इसलिये इसके अन्दर प्रकृति के सफाई करने वाले कीटाणु उत्पन्न हो कर इसका परिवर्तन करते हैं। इसी प्रकार से सैप्टिक टैन्क प्रकार के विष्टा गृहों में भी कीटाणुओं द्वारा विष्टा को छिन्न भिन्न कराया जाता है। अन्तर प्राकृतिक सिपाहियों के केवल प्रकार और आकृति का

है। दोनों प्रकार के विष्टा गृहों में भिन्न २ प्रकार के कीटाणु कार्य करते हैं।

विषाक्त पदार्थों (मल मूत्र आदि) को नष्ट करने वाला एक और वैज्ञानिक सरल और परमोपयोगी साधन

जहां प्राकृतिक नियमों पर आधारित केवल दो ही प्रकार के साधन पदार्थ को नाश (छिन्न-भिन्न) करने वाले हैं एक दहन और दूसरा गलाना जैसा उपरिलिखित विवरण में बता चुके हैं—वहाँ भारत देश के प्राचीन स्वास्थ्य वैज्ञानिक और स्वास्थ्य इन्जीनियर एक तीसरे प्रकार का साधन मल नाश करने का प्रयोग में लाये। इस साधन को हम 'विकरण' के नाम से पुकारते हैं। यह साधन असल में 'गलाव' साधन ही का एक विशेष रूप है। इसमें तीनों प्रकार के विषाक्त पदार्थ अथवा सूखे तरल और गैसीय मनुष्य शरीर से निकलते समय ही पृथ्वी जल, वायु के समुद्रों में मिला दिये जाते हैं। 'विकरण' साधन में होता यह है कि किसी प्रकार के मल को बहुत ही न्यून मात्रा में उठाकर उसी प्रकार के तत्व के समुद्र में उत्पन्न होने के साथ साथ मिला देना, जहां पर वह इतना न्यून गरदाना जावे कि वायु और अग्नि (ऊष्णता) के प्रभाव से कुछ क्षणों में ही उस मल की शुद्धि प्राकृतिक नियमानुसार हो जाती है और कोई भी पदार्थ अन्त में विषाक्त या दूषित नहीं रहता।

यह 'विकरण' साधन छिद्री बसी हुई बस्तियों और ग्रामों में बड़ा ही उपयोगी साधन है। इतना सस्ता प्रयोग है कि खर्चा कुछ होता ही नहीं और स्वच्छता की मात्रा उसी ऊंचे दर्जे की प्राप्त हो जाती है। यदि इस

साधन में स्वच्छता इतनी ऊंची न प्राप्त होती संभवतः भारत के प्राचीन वैज्ञानिक इसका कभी प्रयोग न करते (लेखक का यह विश्वास है)।

यह 'विकरण' साधन मल नाश करने में भारत की ६५ प्रति सैंकड़ा ग्रामीण जनता प्रयोग में लाती है और हमारे गरीब देश के लिये यह साधन बड़ाही उपयोगी और हितकारी है। इस को दूसरे देशों में भी लोग प्रयोग में लाते रहे हैं और कहीं २ ला भी रहे हैं। इसके प्रयोग में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इसी साधन के अधार पर ग्रामीण सज्जन शौचादिक क्रियाएं ग्रामों के नजदीक जंगल में कर लेतें हैं और रहने के मकानों में पखाने आदि प्रायः नहीं बनात। प्राकृतिक नियमानुसार मनुष्य स्वास की बिषाक्त वायु तो इसी साधन पर दुनियां के हर देश में वायु मंडल में फेंकते रहते है। तो यदि वह मल मूत्र भी इसी साधन से वेगरी बस्तियों में 'विकरण' क्रिया से छिन्न भिन्न कर दिया जावे तो इससे कोई खराबी नहीं होती। भारत वर्ष के प्राचीन कई ग्रन्थों में इस बात का वर्णन आया है कि 'एक बड़े तालाब का पानी गंदा नहीं होता तात्पर्य यह था कि एक बड़े तालाव का जल थोड़ी सी गंदगी से गंदा नहीं होता'।

खुली वायु मंडल में जब एक मनुष्य पेशाब करता है तो कोई गंदगी नहीं फैलती क्योंकि उस पिशाब में से बिषाक्त 'अमोनिया' और अन्य प्रकार की गैसें खुले वायु मंडल में मिल जाती है और जल का हिस्सा जमीन में शोषित होकर

नीचे चला जाता है। इसी प्रकार से खुली हवा में विष्टा तुरन्त ही नष्ट कर दी जाती है। इस से सारांश यह निकलता है कि मल मूत्र और विष्टा को छिन्न भिन्न करने के तीन प्रकार के साधन हैं।

(i) दहन (ii) गलाव सड़ाव (iii) विक्रण—इन में से घनीबसी हुई बस्तियों के लिए जैसे शहर और बड़े कस्बे और ग्राम 'गलाव सड़ाव' का साधन काम में लाया जावे और बेगरी बसी हुई बस्तियों में जैसे छोटे ग्राम 'विक्रण' साधन काम में लाया जावे। दोनों साधन अपनी २ जगह पर उपयोगी हैं। इस बात का अवश्य ध्यान रहना चाहिये कि जौनसा साधन किसी स्थान पर प्रयोग में लाया जावे पूर्णतः लाया जावे ऐसा न करने से दोनों प्रकार की क्रियाएँ अधूरी रह जायेंगी और वातावर्ण (जल वायु) की शुद्धि पूरे प्रकार से न हो सकेगी क्योंकि दोनों के उसूल एक दूसरे से अलग हैं जहाँ 'गलाव सड़ाव' साधन में मल मूत्र विष्टा को किसी सीमैंट आदि जल को शोखित न करने वाली वस्तु का फर्श लगाकर जल्दी से जल्दी इकट्ठा करके किसी बक्स में बन्द करने का प्रयत्न किया जाता है वहां 'विक्रण' साधन में घरों के कच्चे फर्श ज्यादा उपयोगी होते हैं। जैसे यदि दो छोटे छोटे मकान के कमरे बनवाए जाएं एक पक्का सिमैंट के फर्श का दूसरा कच्चा मिट्टी के फर्श का। दोनों में रात्रि के समय यदि एक एक बच्चा पिशाब कर दे तो पक्के फर्श वाले मकान में बदबू शीघ्र ही आने लगेगी और कच्चे मकान में चार बच्चों के मल मूत्र से भी बदबू न आयेगी—इसका कारण स्पष्ट है पक्के मकान की दीवारों और फर्श आदि पक्के होने के कारण गंदी और विषाक्त वायु

और जल को शोषित करने की सामर्थ मौजूद नहीं जब कि कच्चे मकान की दीवारों और फर्श में शोषित कर ने वाली सम्मर्थ मौजूद होती है और इसी कारण से शोषण क्रिया आरंभ साथ साथ हो जाती है। इसी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामों में जब तक पहिले वहाँ की सफाई के तरीकों में परिवर्तन न कर दिया जावे जब तक वहां पर कच्ची गलियों या नालियों को पक्का करने की कोई जल्दी न करनी चाहिये वरना स्वच्छता के स्थान में गंदगी अधिक रहना प्रारंभ हो जायगी और स्वास्थ्य दृष्टि कोण से उसका फल विपरीत निकलेगा।

सारांश यह निकला कि जहाँ बंद वायु में विष्टा और मूत्र आदि को इकट्ठा कर के 'सड़ाव गलाव' करने का साधन शहरों और घनी बसी हुई बस्तियों के लिए परमोपयोगी है वहाँ पर 'विकरण' साधन ग्रामों और छिदी बसी हुई बस्तियों के लिए परमोपयोगी है। 'विकरण' साधन इतना सरल और सस्ता है कि हमारे देश की ९५ प्रतिशत जनता इसी साधन का प्रयोग करती है। जिन ग्रामों में उन्नति के हितार्थ पक्के मकान सड़कें या नालियें बनाई जावें उन ग्रामों में मल नष्टता के साधन भी साथ साथ बदल दिया जाना परमावश्यक है।

(ख) जहां पर हमारे मौजूदा स्वास्थ्य रक्षक साधनों में अनेक कारणों से कुछ त्रुटियाँ आगई हैं वहां पर मौजूदा पाश्चात्य स्वास्थ्य रक्षक साधनों में बहुत सा अंश असत्यता का है। हमको यह भ्रम न होना चाहिये कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों की हर बात सत्यता पर आधारित है और हमारे लिये अनुकरणीय है।

हमको सर्व प्रथम अपने प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के बताए हुए सिद्धान्तों को भली प्रकार विचार कर निरीक्षण करना चाहिए और हरेक की वैज्ञानिक महत्वता को समझना चाहिये और आवश्यकतानुकूल देश और काल का ध्यान रखते हुए थोड़ा बहुत घटा बढ़ा कर उनको यदि कहीं त्रुटियां मिले उन को शोधन कर के फिर अपनाना चाहिये और फिर भी यदि यह बात प्रमाणित, हो जावे कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कोई नवीन आविश्कार स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धान्तो में किया है जो हमारे सिद्धान्तों के प्रतिकूल नहीं पड़ता और फिर भी उपयोगी है तो हम को विशाल हृदय से एसी बातों को मान ही लेना चाहिये परन्तु मानना तब चाहिये जब उस सिद्धाँत की उपयोगता अपने सिद्धांतों की उपयोगता से अधिक सिद्ध हो जावे और साथ २ इसके प्रयोग सस्ते भी हों, जिन को हमारी देश की जनता सहन कर सके। हम को ऊपरी तड़क भड़क या बड़े २ कारखानों की बनाई हुई केवल कहावत मात्र में जादू का असर दिखाने वाली स्वास्थ्य संबन्धी स्वच्छता उत्पादन औषधियों के चक्कर से अपने को बचाकर ही रखना होगा और झूटी उन्नति के प्रलोभन से अपने उन स्वास्थ्य रक्षक सिद्धान्तों का जो प्राकृतिक नियमों पर आधारित है बलिदान नहीं करना है और साधारण त्रुटियों के गढ़े से निकल कर असत्यता की खाई में नहीं गिरना है भले ही हमको अपनी त्रुटियाँ दूर करने में थोड़ी देर हो जावे कोई विशेष हानि नहीं होगी।

इतना विश्वास हम फिर दिलाते हैं कि भारत देश में पूर्वजों की बहुत सी स्वास्थ्य संबन्धी, रहन सहन, खान पान, की क्रियायें वैज्ञानिक सत्यता पर आधारित थीं और अब भी है

केवल हम को इन क्रियाओं के वैज्ञानिक महत्व से अनभिज्ञ होने के कारण यह सुनना पड़ता है कि पाश्चात्य आधुनिक वैज्ञानिकों ने स्वास्थ्य विज्ञान में महान उन्नति कर दिखलाई है और यह कि भारत देश वासियों की उन्नति भी केवल उन्ही साधनों द्वारा हो सकती है।

(ग) धूम्र विज्ञान—केवल सादी अग्नि की प्रज्वलता से नित्य प्रतिदिन छोटी छोटी अंगीठियों और अग्नि के ढ़ेरों में अग्नि जला कर घरों की विषाक्त वायु और बीमारी आदि के फैलने पर या चैत्र और फाल्गुन मास में होली आदि के अवसरों पर ग्रामों और शहरों के चौराहों पर बड़े परिमाण में अग्नि के ढ़ेरों में अग्नि जला कर गलियों और मुहल्लों की विषाक्त वायु तो प्राचीन भारत वासी स्वच्छ करने में प्रवीण थे ही परन्तु साथ साथ एक और साधन जिसको 'धूम्र विज्ञान' कहा जाता है इस में भी निपुण थे। इस प्रज्वलित अग्नि में साथ २ कुछ ऐसी विष नाशक, रोग नाशक, स्वास्थ्य वर्धक औषधियां जला कर उन के धूम्र से अनेक प्रकार के लाभ लिये जाते थे। इस विज्ञान में विदेशी वैज्ञानिक आज तक अनभिज्ञ है और अभी तक कोई पुस्तक इस के ऊपर विदेशी वैज्ञानिकों ने नहीं लिखी है। भारत में अब भी यह साधन प्रयोग में लाया जाता है लेखक के पास ६० धूम्र पदार्थों की सूची मौजूद है जो जनता के हितार्थ यदि भारतीय वैज्ञानिक प्रमाण में लाना चाहें तो ला सकते हैं।

—* समाप्त *—